संगीता सिन्हा
लोक कलाकार

द्वारा – श्यामबाई नाग, वार्ड नं.– 28
ग्राम + पोस्ट – कन्हारपुरी,
जिला– राजनांदगांव (छ.ग) 491441
मोबाईल – 7049428816
Email : sinha4191@gmail.com

lsok esa]
funs'kd egksn; rnFkk]
lkaLd`frd lzksr ,oa izf'k{k.k dsUnz]
laLd`fr ea=ky;] Hkkjr ljdkj]
15 bZ] lsDVj&07] }kjdk] ubZ fnYyh 110075

fo"k;% tfu;j Qsyksf'ki 2013&2014 dk Qkbuy fjiksVZ iqLrd dh :i esa izs'k djus gsrq vkosnu i=A
File No. CCRT/JF-3/21/2015

egksn; th]

vkils lknj vuqjks/k gS fd eSa dk;ZØe esa bl oDr bruh O;Lr gks x;h Fkh fd iqLrd dh :i esa esjs vkidks Qkbuy dkih foyac ls Hkst jgh gwA dI;k Lohdkj djsaA foyac ds fy, {kek izkFkhZuh gwA
esa bZ&esy }kjk lkWQV dkih Hkst jgh gw ,oa LihM iksLV ds ek/;e ls gkMZ dkih Hkst jgh gwA

/kU;okn

fnukad % 18-03-2018

Hkonh;k

laxhrk flUgk
File No. CCRT/JF-3/21/2015

Hkfedk

अगर लोक नृत्य के संदर्भ में देखा जाय तो छत्तीसगढ़ का नक्षा इतना बदल गया है कि मेरे लिए इस विषय पर काम करना बहुत कठिन नजर आ रहा था। फील्डवर्क (Field Work) और भी कठिन लगा। जो काम फील्ड में पुरा न हो सका वह नया थियेटर के सहयोग से पुरा हुआ है। नया थियेटर के पास गीतों धुनों एवं नृत्यों भण्डार है। स्व. हबीबतनवीर का छत्तीसगढ़ की धरती से गहरा लगाव और बहुत पुराना परिचय था और नया थियेटर के कलाकारों की जानकारी जिसके सहारे मैं सफलता की मंजिल तक पहुंच पायी इतने लोक कलाकारों एवं लोगों ने मुझे सहयोग दिया है सबका नाम गिनवाना मुष्किल है।

फिर भी कुछ नाम लो रही हूँ। मेरे गुरू सुश्री लक्ष्मी सोढी (उस्ताद विस्मी कला खां संगीत नाटक अकादमी आवार्डी) जो न सिर्फ लोग संगीत प्रेमी है। मालिक उन्होनं बहुत से पुरानों पारंपरिक लोग नृत्यों गीतों का एक अच्छा खासा जखीरा है और आप वर्तमान ''बस्तर बैड'' प्रमुख कलाकारा है।

रेखा देबार यह ऐसे दुर्लभ कलाकारा है जिनका देवार कबीलों के पारपरिक देवार करमा, देवार गाथा, चंदैनी, पंडवानी, भरथरी जैसे लोकगायन लोकनृत्य अचूक पकड श्रीमती रेखा देवार में मुझे देवार करमा के प्रमुख शैलियों से अवगत कराया है।

श्री रामचन्द्र सिंह (संगीत नाटक अकादमी अवार्डी) नया थियेटर के निदेषक ने मुझे पारपरिक एवं परंपा से अवगत कराया और नृत्य के भावपक्ष की भरपुर जानकारी प्रदान कियें।

धन्नुलाल सिन्हा जैसे लोक कलाकार जो अपने संस्कारों से गहराई से जुड़े हुए हैं। मनहरन संघर्ष, अमर सिंह गंधर्व, लक्ष्मण गधंर्व, अगेष नाग श्यामा बाई घुनम तिवारी जैस आदि लोक कलाकारों ने मदद दी। रामचन्द्र सिंह के (Morel Saport) के बिना मेरे लिये आगे बढते रहना मुष्किल था। टायपिंग के सिलसिलें में आयुष जैन अगर रातभर मेंरे साथ मेहनत ना करते तो समय की सीमा में प्रोजेक्ट के बाहर निकल जाने का डर था। प्रोजेक्ट (षोध कार्य) की अंतिम मंजिलों में कदम–कदम पर मेरा धन्नु लाल सिन्हा जी देवी लाल नाग मार्ग दर्षन करना था।

fo"k;oLr vuØekd

v/;k;&1

पारम्परिक शैली था इतिहास, करमा लोक नृत्य का उद्भव एंव विकास

v/;k;&2

छत्तीसगढ़ के पारम्परिक करमा लोक नृत्यों में प्रयुक्त कथा कथन एंव दंत कथाएं का रचनात्मक अध्ययन

v/;k;&3

करमा लोक नृत्य के संगीत पक्ष लोक वाद्यों का प्रयोग एवं वेषभूषा साजश्रृंगार का रचानात्मक अध्ययन

v/;k;& 4

छत्तीसगढ़ के पारम्परिक लोकनृत्य करमा की रचनात्मक अध्ययन लोकनृत्य के लोक कलाकारों का साक्षात्कार एवं मेरे दो वर्ष के अनुभव का विस्तार पूर्वक उल्लेख

v/;k; &1

djek ykd uR; dk mnHko&

'करमा' छत्तीसगढ़ के लोक जीवन में प्रचलित गीत प्रधान लोक नृत्य है। यह छत्तीसगढ़ का आनुष्ठानिक लोक नृत्य है। 'करमा' का अर्थ 'कर्म' से है। कहा जाता है भगवत् गीता के सार में समाहित कर्म और उसके फल के दर्षन से करमा गीत का गहरा रिष्ता है। करमा गीत में करमदेव की आराधना का संगीत है।

कदम वृक्ष की टहनी को ऐस स्थान पर गड़ाया जाता है जहाँ करमा गीत–नृत्य का प्रयोजन होना है। टहनी को विधि–विधान के साथ स्थापित कर गीतों के माध्यम से करमदेव का आव्हान किया जाता है। करम देव जो इनका अपना इष्टदेव है। करमा गीत में प्रेम और आस्था की प्रतिध्वनियाँ जब अपने चरम पर पहुँचती है तो कोसो दूर तक रहने वाले गाँव के लोग गीत और माँर की थाप ध्वनि के सहारे प्रयोजन स्थल पर ना केवल खिंचे चले आते हैं बल्कि आयोजन के हिस्सेदार भी बन जाते हैं। पारम्परिक रूप में करमा गीत का चलन आदिवासी समाज में बहुप्रचलित है लेकिन छत्तीसगढ़ अंचल के कलाकारी में निपुण घुमन्तु जाति देवार समुदाय में भी यह परम्परा विद्यमान है। देवारों के द्वारा गाये जाने वाले करमा को देवार करमा कहा जाता है। ऐसे ही विलुप्त होती बैगा जनजाति में प्रचलित करमा को बइगानी करमा के नाम से जाना जाता है। करमा गीत में गाने के सुर के आधार पर ताल का

चलन है और ताल के आधार नाचने वाले अपने पद विन्यास में परिवर्तन और संयोजन करते हैं। नर्तक दल द्वारा पद विन्यास, के इसी परिवर्तन ने करमा नृत्य की विषिष्ट शैली को जन्म दिया है जिसे झूमर करमा, लहकी करमा, लंगड़ी करमा के नाम से जाना जाता है। छत्तीसगढ़ में करमा की शैली कला की सम्पूर्णता में नजर आती है जो ना केवल गीत, संगीत नृत्य के प्रदर्षनकारी रूपों में सीमित है बल्कि षिल्प का रूप षिल्प के क्षेत्र में पूरी ताकत से साथ उभरता है। यह रूप हम प्रदेष के रायगढ़ सरगुजा जैसे आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र में निवास करने वाले झारा, मलार जाति के बीच देख सकते हैं जो पीतल, तांबे, काँसे के धातुओं को गलाकर मोम और मिट्टी के द्वारा उसे गढ़ते हैं। आग की भट्ठी में पकाकर उसे अंतिम रूप देते है। ढोकरा शैली के इस षिल्प रूप को दुनिया में झारा षिल्प के नाम से जाना जाता है। इसी षिल्प कृति को दुनिया के सामने लाने वाले अविभाजित मध्यप्रदेष शासन के षिखर सम्मान से सम्मानित रायगढ़ जिले के एकताल गांव के ख्याति प्राप्त कलाकार गोविन्द राय झारा से बात करने पर पता चला कि बरसों से करमसेनी वृक्ष बनाने की परम्परा चली आ रही है जो करमा के दर्षन पर आधारित हैं जिसमें करम सेनी वृक्ष में करमा गाते–नाचते जीवन दर्षन का वर्णन है।

इस तरह हम देखते हैं कि करमा गीत में इंसान के जीवन दर्षन का सार है। यह छत्तीसगढ़ का बहुत ही लोकप्रिय नृत्य है। इस पारम्परिक लोक–नृत्य शैली पर अपने रचनात्मक शोध को

अधिक व्यवस्थित रूप देकर इसके विकास की प्रक्रिया और उसमें विद्यमान नृत्य के कलात्मक तत्वों की शोध कर रही हूँ, जिससे अनछुए और अनबुझे लोग लाभान्वित हो सके।

सब गीतों में कहीं न कहीं मनोरंजन की भावना छिपी होती है। मगर कुछ गीत ऐसे होते हैं जो केवल मनोरंजन के लिए गाये जाते हैं। उनके साथ संस्कार, धर्म और पूजा विषेष की भावना जुड़ी नहीं होती। शहरों से दूर सुविधा विहीन गांवों के गली कूचों में जीते ग्रामीण जन अपनी मनो भावनाओं को इन्हीं गीतों के माध्यम से व्यक्त करते रहे हैं। हालांकि आज टी.वी. और रेडियों के अष्लील फिल्मी गीत इन लोकगीतों के गाने की परम्परा को निगलती जा रही है। लेकिन आज भी ये गीत छत्तीसगढ़ की वादियों में गूंजते हैं।

vu"Bkfud uR; xhr djek dh mRifr

विषाल वनों से अच्छादित छत्तीसगढ़ प्राचीनकाल से आज तक सबके लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। गीत और नृत्य यहां के लोगों के जीवन का आधार है। आनन्द–उल्लास और सुख दुख सभी अवसरों पर उनके गीतों और नृत्यों में परिलक्षित होता है। छत्तीसगढ़ी इस प्रदेष की लोक भाषा है जो लिखित साहित्य के बजाय अलिखित, मौखिक और वाचिक परम्परा के साहित्य से समृद्ध है। वाचिक परम्परा के गीतों में यहां गाये जाने वाले प्रमुख लोक गीत है। इन गीतों में मानव मन की उबती हुई भावनाएं झरने की तरह फूटकर निकल पड़ती है। इन लोकगीतों को सात भागों में बांटा गया है :–

1- lLdkj xhr %& इसमें सोहर गीत बिहाव गीत और पटौनी गीत आते है।

2- _rvk l l cf/kr xhr %& इसमें फाग, बारामासी गीत और सावनाही गीत आते है।

3- mRlo xhr %& इसमें छेरछेरा, राउत नाच आ।र सुआ गीत आते है।

4- /kel vkj itk xhr %& इसमें गौरा गीत, माता सेवा गीत, जवांरा गीत, भोजली गीत, धनकुल गीत और नागपंचमी गीत प्रमुख है।

5- ykjh xhr %& बच्चों को सुलाने और उनके मनोरंजन के लिए गाये जाने वाले गीत को लोरी गीत कहते है। इसके अलावा इसमें फुगड़ी, काऊ–माऊ, डांडी–पौहा और खुड़वा गीत भी आते है।

6- eukjtu xhr %& इसमें केवल गाये जाने वाले गीत और नृत्य के साथ गाने वाले गीत आते है। केवल गाने वाले गीतों में ददरिया, बांसगीत और देचार गीत प्रमुख है। जबकि नृत्य के साथ गाये जाने वाले गीतों में करमा गीत, पंथी गीत, डंडा गीत और नाच (नचौरी) प्रमुख है।

7- vU; LQV xhr %& इसमें भजन गीत आते है।

मनोरंजन के लिए नृत्य के साथ गाये जाने वाले गीतों में करमा गीत प्रमुख है। यद्यपि करमा नृत्य एवं गीत एक धार्मिक पृष्ठभूमि में होते है, परन्तु करमा गीतों में धर्म और पूजा की भावना नहीं पायी जाती। ये आनन्द और मनोरंजन के गीत ही हैं। इन

नृत्य गीतों का कोई निष्चित समय नहीं है। विभिन्न जातियां इसका आयोजन करती हैं। प्रमुख रूप से वर्षा ऋतु के प्रारंभ से लेकर फसल के कट जाने तक किसी भी समय ये गीत गाये जाते हैं। करमा गीत के संबंध में अनेक मत है। कुछ लोगों का मत है कि करमा देवता की पूजा के बाद इन नृत्य गीतों का आयोजन होता है। अतः इन्हें करमा नृत्य और करमा गीता कहा गया है। कर्म का आषय यहां कार्य और कुछ लोग भाग्य को मानते हैं। लोककथा के अनुसार करमसेन राजा था। उसके उपर विपत्ति आ गयी। उसने मनौती मानी और नृत्य गान किया जिससे उसकी विपत्ति दूर हो गयी। तब से करमा नृत्य की गीत उत्पत्ति माना जाता है।

करमा गीत एक अनुष्ठानिक गीत है। करमा गीत के संबंध में अनेक बातें प्रचलित है। प्राचीन काल में जम्मू दीप रेवा खण्ड छत्तीसगढ़ की पदमपुरी नामक गांव में महानदी के किनारे पदमसेन नाम का एक बंजारा रहता था। उसकी पत्नी का नाम पद्मिन था। ये लोग बड़े कंजूसी और बेईमानी से धन संचय किया करते थे। इनके सात पुत्र थे। इनके नाम कलिंगहा, घुघुरहा, लमतूरी, बंदियाहा, फून्दरहा, झांझ मंजीरहा और सरमाहा था। इनके अलावा इनकी एक पुत्री सतवंतीन थी। बंजारा की मृत्यु के बाद बेईमानी से संचित किया धन नष्ट होने लगा। क्योंकि इनके सभी पुत्र अलाल और कामचोर थे। उन्होंने अपने पिता की लाष को जमीन में दफन कर दिया जिससे जमीन अपवित्र हो गयी और उस वर्ष नहीं हुई जिससे अकाल पड़ गया। व्यापार करने पर उन्हें हानि हुई।

सरमाहा ने श्मषान में खेती की और सब प्रसन्न हो गये। अब वे कदम की डगाल को काटकर जमीन में गाड़कर उसकी मिलकर पूजा किये और गीत गाकर नृत्य किये दूसरे दिन उस डगाल को महानदी में सरा दिये जिससे करमदेव उनसे पुनः रूष्ट हो गये । तब सरमाहा उसे लेने महानदी गया। वहां पर करमदेव से क्षमा याचना करने पर करमदेव का दर्षन हुआ। तब से सरमाहा को करमाहा कहा जाने लगा। उसी समय से करमा गीत गाये जाने लगा। इस नृत्य गीत में स्त्री और पुरूष दोनों भाग लेते हैं। स्त्री पुरूष एक पंक्ति गाते हुए झुककर आगे बढ़ते हैं और दूसरी पंक्ति को गात हुए सीधा होकर अपने पूर्व स्थन को लौट जाते हैं। देखिये करमा गीत की एक बानगीः—

चोला रोवत हे राम बिन देखे परान
दादर झांवर झाड़ी ढूढ़ों डोंगर बीच मंझाय।
सबै परेतन तोला ढूढ़ों कहां लूके हे जाय।।
चोला रोवत हे राम बिन देख परान।।
माया ला तै कस के टोरे सुरता मोर भुलाय।
मोर मड़इया सूनी करके कहां करे पहुंनाई।।
चोला रोवत हे राम बिन देखे परान
इन नैना मा नींद नहीं आये हिरदा होइगे सूना।।
डोंगरी उहरी तोला ढूंढौ विपदा बढ़गे दूना।।
चेला रोवत हे राम बिन देखें परान।

Ykd uR; dh mRifRr ,oa fodkl

लेकनृत्य की उत्पत्ति पर विचार करने के पूर्व मानव की आदिम सभ्यता के अतीत काल की ओर भी दृष्टिपात करने की आवष्यकता है। हजारों वष्ज्ञ पूर्व जब आय एवं सभ्य जातियाँ नहीं थीं, आज के जैसे शहर और गांवों का प्रचलन नहीं था, उस समय लोग गिरिग कंदराओं एंव जंगलों में रहकर जीवन निर्वाह करते थे। परस्पर मेल–जोल, नाता–रिष्ता जैसे सामाजिक क्रिया–कालापों का पूर्ण अभाव था। सांसारिक गतिविधियों से अनभिज्ञ आदिमानव को धरती से अन्न उपजाना नहीं आता था। शरीर ढंकने के लिए न तो कोई उपयुक्त साधन थे और न ही महत्व समझते थे। आरंभिक काल में आदिमानव प्रायः नग्न ही रहा करता था। कालान्तर में पेड़ की छाल और पत्तों से शरीर को ढकना सीखा गया। खाने के लिए कंद–मूल, फल या जंगली जानवरों को मांस प्रापत किया जाता था। शनैः शनैः षिकार का ज्ञान प्राप्त कर तीर–कमान, भाला, बरछी आदि अविकसित अस्त्र–षस्त्र लेकर षिकार की तलाष में दिन–रात जंगलों में भटकते रहते थे। इसी उपक्रम में वे कभी जानवरों का षिकार करते तथा जानवर उन्हें अपना षिकार बनाते थे। दिन–रात जंगलों, झाड़ियों में भ्रमण के दौरान आदिमानव ने प्रकृति की अनेक रचनाओं, क्रियाओं का अवलोकन उनमें रच–बस कर निकट से किया। उसने हवा के झोंकों से डालियों को झूमते देखा, बिजली की चमक देखी, वर्षा की बूंदों की टप–टप की ध्वनि का अनुभव किया, बादलों की गर्जना सुनी तथा जंगली हाथियों को मदोन्मत

चाल से झूमते देखा। चिड़ियों की चहचहाहट, भौरों की गुनगुनाहट, झीगुरों की झनझनाहट और कोयल के कहू–कहू का मधुर स्वर भी उसके कानों में पड़ा। हिरन की चौकड़ी, सर्प की लहराती गति, मेंढकों की उछाल तथा मोर और कबूतर की थिरकन ने उसे आकर्षित कर नृत्य क्रिया के आविर्भाव के लिए प्रेरित किया। प्रकृति की इस अनोखी क्रियाषीलता को देखकर उसने भी अनुकरण करना प्रारंभ किया। चूंकि मानव प्रारंभ से ही कौतूहल प्रिय एवं सृजनषील रहा है, अतः प्रकृति की अनेक मनोहरी कलाओं की इन नृत्यात्मक विधाओं से प्रेरणा लेकर आदिमानव ने अपने मनोरंजन के लिए धीरे–धीर अनेक नृत्य कलाओं को जन्म देना आंरभ किया। इससे उसे सुख और मनोरंजक अनुभूति का अनुभव हुआ। इसी अनुभूति के अनुरूप आदिमानव प्रकृति से प्राप्त नृत्यात्मक क्रियाओं की साधना से निरंतररत् रहा। अनेक उतार–चढ़ाव के उपरांत उसने लोकनृत्य कला को जन्म दिया, जो कालान्तर में विभिन्न लोक नृत्यों के रूप में स्थापित होकर लोक जीवन के अभिनन अंग बन गये।

लेक नृत्य प्रकृति की अनोखी देन है। प्रकृति दर्षन का दूसरा नाम ही लोक नृत्य है। डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे की ''भारतीय संगीत का इतिहास'' के अनुसार ''भारतीय परम्परा के अनुसार नटराज षिव नृत्य कला के आदि श्रोत हैं और ''नृत्यकला का ताण्डव तथा लास्य रूप भगवान षिव तथा पार्वती की देन माना जाता है।

लेक विष्वास के अनुसार भगवान शंकर एवं माता पार्वती को प्रकृति का रूप ही माना गया है, तदनुसार लोक नृत्य प्राकृतिक उपज है। भगवान शंकर के ताण्डव नृत्य के अवलोकर से विभिन्न लोक नृत्यों की पद चालें यथा–सैला, झूमर, सजनी आदि ही परिलक्षित होती है जो प्रमाणित करती है कि ताण्डव स्वयं लोक नृत्य है जिसे आदिमानव ने ग्रहण किया है। लोकनृत्य में पैरों की थिरकन, चंचलता, उछल–कूद गति–मान क्रियाएं वीभत्स भंगिमाएँ आदि रूप व्याप्त है जो ताण्डव नृत्य में भी विद्यमान होते हैं। जिस तरह आदिमानव शारीरिक स्वरूप और सृष्टि की अन्य वस्तुओं का क्रमिक एवं युग परक विकास हुआ, उसी तरह लोक नृत्यों का भी क्रमिक एवं युगानुरूप विकास हुआ है।

मनव आदिकाल से नाचता चला आ रहा है। छोटा सा षिषु पालने में जब आनन्द विव्हल होता है उसकी खुषी का पारावार नहीं रहता। वह हाथ–पैर चलाता है, किलकारी मारता हैं। उसका आनन्द उसके अंग–प्रत्यंगों से मानो फूटकर निकल पड़ता है। मृग का छौना, गाय का बछड़ा माँ का दूध पीकर खुषियाली से उछलता कूदता है। पक्षी भी जब मन में उमंग आती है, तो अपने–अपने जोड़ों के सामने उन्हें रिझाने के लिए नाचते हैं। काले–काले मेघों को देखकर मोर नाचते हैं। कबूतर–कबूतरी के आसपास नाचते हुए किलोल करता है। इस प्रकार जान पड़ता है कि समस्त जीवधारी वर्ग में आनन्द का सृजन होता है और वह आनन्द अपने आप प्राणी मात्र के हाव–भाव, अंग संचालन से या अंग विन्यास से प्रकूट होता

है। उसके अंग पकड़ते हैं, मचलता, उछलता है, बस लोक नृत्य का जन्म यही से होता है।

मनव, अन्य प्राणियों की तुलना में बुद्धिमान है, विवेकषील है। आदिकाल से ही उसने इस प्रकृति– जन्य आनन्द को यों ही बिखरने नहीं दिया। युबानुरू नर्तन की ये गतिवितधियाँ मानव जीवन में अपने आप परिस्थिति की आवष्यकतानुसार श्रृंगारबद्ध होती गई। उन पर मानव की विभिन्न प्रकार की रूचियों का प्रभाव पड़ा साथ ही सामाजिक संस्कार, आचार–विचार, वातावरण, परिरम आदि भी प्रभावित हुए। उनका क्रमिक लोकव्यापीकरण मानव के दैनिक जीवन में हुआ। नर्तन, लोक नर्तन में परिवर्तित हुआ। लोक नर्तक की गतिविधियाँ निखरती गई। मंतजी गई, बनती– बिगड़ती गई और विभिन्न प्रकार की शैलियों का रूप धारण करते हुए लोक नृत्यों में परिवर्तित होती गई तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तगत होती गई। आज जो हमारे सामने है, वह मानव समाज के ऐसे ही उल्लास, उमंग, आनन्दानुभूति का एक जीवन चित्र है, प्रकृति प्रदत्त रू है। यही तो लोकनृत्य है। लोक नृत्य में मानव अपना अपना सम्पूर्ण अस्तित्व भूलकर लोकनृत्य रूपी सागर में डूब जाता है। उसकी आनन्दमयी चेतना उस चरम छोर पर पहुंच जाती है, जहाँ केवल लोक–नृत्य संगीत की मोहक तल्लीनता रह जाती है, और फिर समस्त प्रकृति उसे अपने में ही समाहित प्रतीत होती है, यही लोक नृत्य है।

लोक नृत्य प्राकृतिक न इनकी शास्त्र परक रचना की गई है, न ही इनके शास्त्रोंक्त सूत्र निर्धारित है। काल की गति और उतार–चढ़ाव का सामना करते हुए, अपने अस्तित्व की स्वयं रक्षा करने में समक्ष ये लोक नृत्य सदियों से समाज और राष्ट्र की निधि के रूप में निखरते और संचारते चले आ रहे हैं। प्रकृति प्रेरणा की प्रतिमुर्ति है, हमारे ये लोकनृत्य। प्रकृति की नित नई बदलती हुई छटा और उन्मुक्त वातावरण ने आदि मानव को नृत्य करने के लिए प्रेरित किया, ऐसा जान पड़ता है। लोक नृत्यों की सृजनषीलता के संबंध में कल्पना है कि सर्वप्रथम प्रकृति के बवंडरों की तरह लोक नृत्य भी बेतरतीब रहे होंगे। फिर मानव ने प्रकृति की लयात्मक कोमलता को अपनाया। उसने वृक्षों की लहराती हुई कोमल डालियों से लोकच वुराई। पानी की मचलती हुई लहरों से लहराना पाया। पक्षियों की कतारों से नृत्य में कतार बनाना सीखा। पक्षियों से फुदकना, हिरनों से उछलना और कलख से समूह में गाना सीखा। इस प्रकार लोक नृत्य की समस्त खूबियाँ मानव ने प्रकृति और उसके मुक्त वातावरण से प्राप्त की।

जिस भू–भाग की जैसी प्राकृतिक छटा है, आज वहाँ प्रचलित लोक नृत्य भी उसी के अनुरू‍प है। बीहड़ पहाड़ों पर बसने वाले लोगों के लोक नृत्य बहुत ही मंद है, तो भाटा पहाड़ों पर बसने वाले लोगों के लोक नृत्य उछल–कूद लिष्‍ हुए है। मैदानी भागों के नृत्य सरस, सीधे और गतिमान है। जहाँ का वातावरण प्रकृति की छठा से हीन है, वहाँ के लोक नृत्यों मेरसहीनता भी है। इससे सिद्ध

होता है कि लोक नृत्यों के निर्माण में प्रकृति ही जननी है। प्रकृति ही उनका मूल है। सजाने–संवाराने का काम (लोक) समाज ने किया दहै। उसने अपनी संस्कृति की छाप उनकी साज–सज्जा में लगाई है। अपने सांस्कृतिक रीति–रिवाजों को लोक नृत्य रूपी माला में पिरोया है। चूंकि स्थान विषेष के अनुसार समाज में विभिन्न वर्गो में विभाजित है, उसकी संस्कृति, उसकी मान्यताएँ भी अलग–अलग है। इसलिए लोक नृत्य भी विभिन्न प्रकार के हो गए है। समाज के अनुसार लोक नृत्यों के चलन में भी भिन्नता है। वे खास समाज, जाति क्षेत्र या वर्ग के बन गए हैं। पर मूलभूत तत्व सभी लोक नृत्यों में समान है, यथा–समूह पंक्तिबद्धता, अर्थ घेरा, उछलकूद, सरपट चाल, गोल घेरा, लोच कलाबाजी, हाथ में हाथ की पकड़ एवं पद संचालन आदि।

लोक नृत्य किसी एक व्यक्ति की बपौती नहीं है और न ही एक व्यक्ति की कृपा से जिन्दा है। लोक नृत्यों की आत्मा और सृजनहार तो समाज है, लोक है। इसके बदले मेंसमाज या लोक का आनन्द स्त्रोत लोक नृत्य है। लोक नृत्य समाज का मुंह बोलता दर्पण है, जिसके प्रतिबिम्ब मतें समाज या लोक का सुन्दर रूप देखा जा सकता है। लोक नृत्य किसी भी समाज, क्षेत्र, अंचल एवं राष्ट्र की जिन्दा दिली के परिचायक हैं।

लोक नृत्यों की उर्वरा भूमि ग्रामीण परिवेष है। गांवों में लोक नृत्यो के आयोजन के लिए कोई निष्चित या नपा तुला रंगमंच नहीं होता है। बल्कि खूले रू‍प में ग्रामीण जनों द्वारा निर्धारित किए गए

एक सार्वजनिक स्थान में लोक नृत्य सम्पन्न होते है। ऐसे सार्वजनिक खुले स्थान को गांवों में 'खरना', 'अखरा', 'चौपाल' 'मैदान' या 'डॉण' आदि नामों से जाना जाता है। गांव के लोग बिना किसी मान–मनौव्वल की प्रतिक्षा के इस निर्धारित स्थान में लोक नृत्य के लिए एकत्र होते हैं। आपस में चर्चाएं होती है। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक मामलों पर विचार– विमर्ष होते हैं। चूंकि लोक नृत्यों के लिए यह स्थान खुला होता है। अतः लोक नृत्यों में सम्मिलित ग्राम्यजनों के मस्तिष्क एवं हृदय भी खुले होते हैं। नैतिक मूल्यो तथा विषाल सांस्कृतिक मान्यताओं के उच्च आदर्षो का अनुपम उदाहरण हमारे लोक नृत्य है। गांव में जब लोक नृत्यों का आयोजन होता है तो गावं में निवास करने वाले हिन्दु, मुसलमान, सिख, ईसाई गरीब, अमीर आदि बिना किसी भेद–भाव या संकुचित भावनाओं के सम्मिलित होते हैं जो सम्मिलित नहीं होते हैं वे दर्षक बनकर प्रोत्साहित करते हैं। ऊँच–नीच, जात–पात जैसी कलुषित भावनाओं के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। लोक नृत्य की बेला में विभिन्न धर्म के अनुयायियों का एक ही धर्म है। लोक नृत्य का आनन्द प्रापत करना। भारतीय लोक संस्कृति का आधार सत्व ''अनेकता मेंएकता'' है इसीलिए हमारे लोक नृत्यों में निहित है। इससे भी बढ़कर बात लोक नृत्यो में सन्निहित भावनात्मक एकता है। वास्तव में लोक नृत्य ग्राम्यजनों के हृदय पटल में एक–दूसरें के प्रति सम्मोहक स्नेह जागृत करते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक अनुराग है, जिसके कारण ग्राम्यजन किसी

जात—पात या वर्ग भेद की कभी कल्पना नहीं कर पाता । लोक नृत्यों की छत्र—छाया में जाति भेद से ऊपर समग्र रूप से एक ग्राम परिवार होता है, जो एकदूसरे के साथ सौहार्द्रपूर्ण संबंधों से जुड़ा रहता है। अवस्था के अनुसार सभी वर्ग के लोग गांव में एकदूसरे के भाई—बहिन, काका—काकी, मामा—मामी, दादा—दादी, पुत्र—पुत्री, भतीजा—भतीजी आदि पवित्र रिष्तों के अनुपालक होते हैं जो भारत की निजी पहचान है यह पहचान आज की नहीं सदियों पुरानी है, जो लोक नृत्य रूपी मातृत्व ममता के नाजुक बंधनों से अपने अपने धार्मिक परिवेष में रहते हुए भी ग्राम्य—जनों को एक छोर से दूसरे छोर तक बांधे हुए हैं। यही वह मर्म है, जिसमें शहद जैसी मिठास, धवन बर्फ जैसी ठंडक, दूध जैसी उज्जवलता और गुलाब और बेला जैसी खुषबू है।

लोक नृत्य साधन है, उमंग का, हंसी—ठिठोली का, मौज मस्ती का। इसमें गांव के निवासी कृत्रिम षिष्टता, बनावटी मर्यादा के मुखौटे को फेंककर हार्दिक आत्मीयता के साथ सम्मिलित होते हैं। यहाँ सारी सीमा रेखाएं अपने आप टूटकर नृत्य की धारा में विलीन हो जाती है। लोक नृत्य उन्मुक्त वातावरण में कलुषित भावनाओं के समस्त विकारोन्मुख बंधन ढीले पड़ जाते हैं। इस तरह गांवों में कौमी एकता के ठोस प्रतीक है, हमारे लोक नृत्य।

djek ykd uR; dh fodkl ,o fo’k"krk,¡ &

प्रायः सभी लोक नृत्य समूह में नाचे जाते है। लोक नृत्य स्त्री–पुरूष सम्मिलित नृत्य करते है। लोक नृत्यों के लिए रंगमंच की आवष्यकता नहीं होती है। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में, खुले मैदान में, गांव की गली खोरी में भी नाचे जाते हैं। लोक नृत्य स्वच्छन्द है, बंधनों से मुक्त है। किसी प्रकार के नियम बंधन में इनकी मौलिकता क्षतिगस्त होती है।

लोक नृत्य के नर्तकों को अलग से किसी विशेष प्रकार की व्यवस्था की आवष्यकता बहुत ही कम पड़ती है। उनकी अपनी निर्धारित वेषभूषा और साज–सज्जा होती है, जिसका लोक नृत्यों के लिए सर्वाधिक महत्व है। इसी लोक नृत्रो की पहचान होती है। इसके बावजूद नृत्य के लिए वेषभूषा, साज–सज्जा का उपयोग जरूरी होता है, अन्यथा रोजमर्रा के लिए सामान्य वस्त्रादि पर्याप्त है। गोंड़, भील, बैगा, उराँव, परजा आदि उन जन–जातिों की वेषभूषा अत्यन्त चित्ताकर्षक होती है।

लोक नृत्यों में समय का कोई बंधन नहीं है। नृत्य कब आरंभ किया जाए, कब समाप्त किया जाए इसका इसका कोई नियम नहीं है। एक ही नृत्य घंटों चल सकता है। और पांच मिनट में भी समाप्त किया जा सकता है। लोक नृत्यों की सबसे बड़ी विषेषता ये है कि इसमें सभी नर्तक होते हैं और सभी दर्षक। किसी को दिखाने के लिए अथवा रिझाने के लिए लोक नृत्य नहीं किये जाते है। ये तो मन की उमंग निकालने के लिए प्रदर्षित होते है। जिसके मन में जब उमंग उठी, नर्तकों में मिलकर नाचने लगा और जब

थक गया तो बैठकर देखने लगा। लोक नृत्यों प्रदर्षनकारी दरबारी प्रवृत्ति से मुक्त है, यही कारण है कि लोक नृत्यो में कोई घराना परम्परा नहीं है।

लोक नृत्यों की गति और रचना सादी, सरल और स्वाभाविक होती है, ताले सरल होती है जिन्हें सीखने में कठिनाई होती ळै। लोक नर्तक के शरीर में कमनीय लोच रहती है, जैसे कि हवा के झोकों से झूलती हुई वृक्षों की नरम–नरम टहनियो में। जब स्त्रर–पुरूषों का दल नाचता है तो ऐसा लगता है मानों अनाज से लहराते खेतों पर से मचलती हुई हवा चल रही हो और उसके झोकों से फसल लहरा रही हो या चंचल तरंकगनी में लहरें उठ रही हों। लोक नृत्यों के वाद्य बहुत ही सादे सरल होते है। लोक–नृत्यों की गति और विधा परिवर्तन का नियंत्रण वादक दही करता है। लोक नृत्त्यों में वाद्यों की संख्या निर्धारित नहीं होती है। एक वाद्य से भी लोक नृत्य सम्पन्न हो सकता है। और एक दर्जन वाद्य़ भी उपयोग में लाए जा सकते है। एक ही प्रकार के अनेक वाद्य बजाये जा सकते है तथा विभिन्न प्रकार के अलग–अलग वाद्यों की लय–ताल से भी लोक नृत्य होता है। नृत्य के समय वादकगण स्थिर होकर भी बजा सकते हैं तथा नृत्य करते समय वाद्यों का आपस में परिवर्तन कर सकते हैं, तात्पर्य यह है कि लोक नर्तक ही वादक भी होते है। लोक नृत्यों में प्रयोग होने वाले लोक वाद्य सस्ते मूल्य के होते है।

लोक नृत्यों को सीखने–सिखाने के लिए ग्रामीण परिवेष में किसी गुरू या गंडा–गड़ौरी की आवष्यकता नहीं होती है। गांव का समाज अपने आप ही नई पीढ़ी को जीवन क्रमानुसार सिखाता रहता है। नाचते हुए दल को देखकर बाल समाज के मन में अपने आप ही इच्छा जागृत होती है। वे नर्तकों की भीड़ में घुस जाते हैं, गिरते हैं, उठते हैं, किसी की उंगली पकड़कर फिर नाच ने लगते है। वे निरंतर नाचते जाते है और इस तरह वे गांव व समाज के कुषल लोक नर्तक बन जाते है। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना ही तो इन नृत्यों की विषेषता है। लोक नृत्योमे शारीरिक श्रम बहुत होता है। यह अपने आप में सम्पूर्ण योग है। लोक नृत्य में मनोरंजन के साथ व्यायाम भी होात है। लोक नृत्य तो आत्मिक आनन्द को उभारने वाला है, इसके द्वारा शरीर का भी स्वाभाविक विकास होता है।

लोक गीत, लोक नृत्यो के प्राण है यद्यपि लोक नृत्यों में नृत्य ही प्रधान होता है। किन्तु बिना लोक गीतों के लोक नृत्य अधूरा है। ये गीत संबंधित लोकांचल की बोली में होते ळै। लोक नृत्य के अपने निर्धारित लोक गीत होते हैं बल्कि नृत्य में सम्मिलित सभी लोक–नर्तक स्वयं सामूहिक रूप से नृत्य की लय और ताल के तारतम्य में गाते हैं। मैं अपनी बृद्धि अनुसार करमा लोक नृत्य के समस्त आयामों का अध्ययन एवं शोध कर करमा शैली (चलन) इतिहास, उद्‌भव व विकास का बारिकी से अध्ययन करके अपनी विचार व्यक्त कर रही हूॅ।

v/;k; & 2

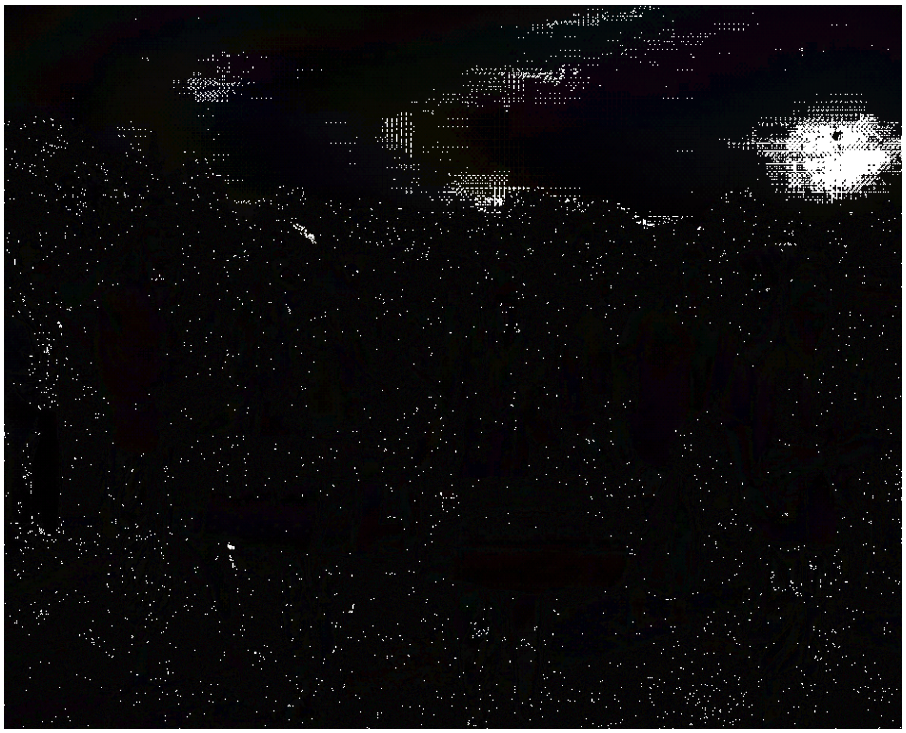

djek yksd u`R; esa iz;qDr dFkk&dFku ,oa nardFkk,a

djek u`R;

ekuo thou dk ewy vk/kkj ^^deZ** gSA ifo= xhrk esa Hkh Jhd`".k dk mins'k gS fd deZ djks Qy dh vk'kk er djksA deZ/;sokf/kdkjLrs ekQys"kq dnkpuA xhrk& djek u`R; deZ ¼Je½ dh ewy Hkkouk ls vksrizksr gSA djek u`R; xhr&iz/kku gSA J`axkj] Je] deZ] izd`fr& lkSUn;Z ,oa vkjk/kuk dh iz/kkurk bu xhrksa esa ikbZ tkrh gSa ;g ewyr% xksaM+ vkfne tkfr dk tkrh; yksd u`R; gSA xkssaM+ vkfne tkfr dh laLd`fr] dyk ,oa thou o`Rr ds lVhd n'kZu djek u`R; ,oa

xhrksa esa gksrs gSA vkfnoklh laLd`fr ds v/;srk ineHkw"k.k MkW- osfj;j ,fYou us dgk Fkk ^^eSaus djek ns[kkA djek ukpk gSa vkSj djek ds xhr xk, gSaA bu lcesa vkeksan&izeksn] laLd`fr ds izfr vVwV izse vkSj thou thus dh tks eeZLi'khZ vfHkO;fDr eq>s gqbZ gS] mldk o.kZu djus ds fy, esjs ikl 'kCn ugha gSA ^^vkfnoklh laLd`fr ds v/;srk 'ks[k xqykc ds mnxkj gS %& ^^lalkj :ih lkxj esa ,d vksj lq[k gS rks nwljh vksj nq[kA dgha dkys vkSj xksjksa dk fuokl gS rks dgha yaxM+s vkSj ywyks dkA iki vkSj iq.; dh bl nqfu;kW esa dgha gkgkdkj gS rks dgha ekWnj ct jgk gS] fVedh ct jgh gS vkSj djek u`R; gks jgk gSA bl lalkj ds cktkj esa jRu fcd jgk gS] ijUrq tks prqj gS os lkSnk dj ysrs gS vkSj ew[kZ iNrkrs jg tkrs gSA djek esa ,slk gh fpUru vkSj n'kZu gSA**

djek u`R; dh i`"BhHkwfe esa vusd fdaonafr;k¡ izpfyr gSaA vFkok&deZ&nsork dks ;kn djus gsrq djek u`R; fd;k tkrk gSA jktk djelsu dks foifRr ls eqfDr feyh rks mlus mRlo dk vk;kstu fd;kA dje&o`{k dh iwtk ds volj ij djek gksrk gSA deZ ¼drZO;½ iwtk dk vk/kkj djek u`R; gSA bu fdaonfUrljsa dj lgkjk ysdj fo)kuksa us vius&vius <ax ls djek u`R; dh mRifRr dks Li"V djrs gq, rjg&rjg dh O;k[;k,¡ dh gSaA djek dh 'kkfCnd O;k[;k djus ls Kkr gksrk gS fd dj

ekus gkFk] ek ekus feykvksa] dj&ek gkFk feykdj lkFk&lkFk ukpuk&xkuk gksrk gS fd gkFk feykvksa vkSj lkFk&lkFk ukpksa xkvksaA djek u`R; ds voyksdu ls Li"V gS fd djek urZdksa ds gkFk dHkh ugha NwVrsA u`R; djrs le; gkFk] lnSo ,d urZd dk nwljs urZd ds gkFk] dej vFkok da/ks ij gh jgrk gSSA vr% ,slk izrhr gksrk gS fd blds QyLo:i gh bldk ukedj.k djek fd;k x;k gksxkA

NÙk [illegible] ksa esa ik;k [illegible] dk gh yksd u`R; gSa] fdUrq Hkaqbgkj] cSxk] mjkWo] dksjdw] nsokj vkfn tkfr;kW Hkh vius yksd u`R;ksa esa ls dqN dks djek u`R; ds uke ls lacksf/kr djrh gSA djek yksd u`R; NÙkhlx<+ esa yksd u`R;ksa dk jktk gSaA djek u`R; dk izeq[k yksd ok| ekWnj gSA ekWnj yksd ok|ksa dk jktk gSA djek u`R; xksaM+ laLd`fr dk laokgd gSA bl u`R; ls vkil esa eS=h ds Hkko mRiUu gksrs gSA blesa tc O;fDr dk gkFk vU; O;fDr ds

gkFk dh maxfy;ksa esa QaIrk gS rks eu esa xM+h gqbZ Qkal vius&vki fudy tkrh gSA u`R; djrs&djrs iqjkuh Is iqjkuh nq'euh Hkh lekIr gks tkrh gSA vr% djek u`R; dk ewy /;s; euq''; ds iqjkru oSeuL; dks Hkqykdj izse dh vfHko`f) djuk gSA vuqHko Is Kkr gksrk gS fd ;fn xksaM tkfr ds yksd thou Is djek u`R; foyx dj fn;k tk, rks mudk lEiw.kZ thou lq[ks o`{k ds leku gks tk;sxkA

NÙkhIx<+ e/;izns'k esa djek u`R; dh ijEijk izkphure~ gSA esdy] vejdaVd] foU/;] lriqM+k] flgkok ,oa cLrj dh igkfM+;ksa ds lqnwj ouizkUrksa esa fuokl djus okys ouokfl;ksa eas djek u`R; dh ijRijk vrhr Is vkt rd cuh gqbZ gS] vFkok& fcykliqj dk Hkqabgkjh djek] jktukanxkao&nqxZ&jk;iqj dk nsokj&djek] jk;x<+ dk djek ftfr;k] c?ksy[kaM+ dk c?ksyh djek vkfnA

eqfj;k djek u`R;

cLrj ftys ds vcw>ekM+ {ks= esa eqfj;k tutkfr fuokl djrh gSA vU; lH;rkvksa vkSj laLd`fr;ksa ds izHkko ds ckotwn ;fn vkfnoklh laLd`fr lqjf{kr jg ikbZ gS rks og mlds tu&thou vkSj yksd ijEijkvksa ds dkj.kA muds xhr&laxhr] u`R;] cktkj] esyksa] eM+bZ] eht&R;kSgkj rFkk thou ds fofHkUu laLdkj mUgsa viuh laLd`fr ls tqM+s jgus dh fujUrj izsj.kk nsrs gSA osfj;j ,yfou us fy[kk gS fd ^^eqfj;k vkfnoklh ds thou esa ?kksVqy ,d vR;kf/kd fodflr laLFkk gh ugha] oju~ muds lkekftd vkSj /kkfeZd thou dk dsUnz Hkh gSA** eqfj;k ;qok dk thou&pØ ?kksVqy ds bnZ&fxnZ gh ?kwerk gSA okLro esa ?kksVqy gh eqfj;k laLd`fr ,oa dyk dh laj{kd laLFkk gSA eqfj;k tutkfr vius lkSUn;Z cks/k] dykRed :>ku vkSj dyk ijEijk esa fofo/kk ds fy, fo[;kr gSA ?kksVqy] eqfj;k vkfnoklh lewg dh ,d ,slh ?kuh

lkaLd`frd cqukoV dh laLFkk gS] ftldh fuxjkuh esa eqfj;k ;qok tuksa dks lekthd`r fd;k tkrkgSA eqfj;k ;qodks dks vius leqnk; dh jhfr&uhfr vkSj O;ogkj esa nhf{kr gksuk vfuok;Z gS vkSj bl dk;Z ds fy, ?kksVy ls c<+dj dksbZ nwljh laLFkk ugha gSA

eqfj;k tkfr ds ?kksVqyksa esa tks u`R; gksrs gSa] mUgsa eqfj;k ?kksVqy u`R; dgrs gSaA bu u`R;ksa dk Lo:i NksVk gksrk gSA bu u`R;ksa esa gWlh&etkd] euksjatu vkSj ekSt&eLrh dh gh izeq[krk gSaA Lo:i Hkys gh NksVk gksrk gS] fdUrq ;s u`R; bPNkuqlkj ?kaVks ukps tk ldrs gSaA eqfj;k ?kksVqy u`R;ksa esa izeq[k gSa& eqfj;k djek] gqydh vkSj ek¡nqjh u`R;A

eqfj;k djek u`R; %& ?kksVqy ds izkax.k esa meax vkSj mYykl ds vuqlkj u`R; vk;ksftr gksrk gSA ;g nks iafDr;ksa esa vkeus&lkeus [kMs gksdj pyrk gSA blesa izk;% yM+ds&yM+fd;ka gh Hkkx ysrs gSaA urZd x.k pkj dne vkxs pyrs gSa vSj fQj pkj dne ihNs gVrs gSA ,d iafDr esa yM+ds rFkk nwjh esa yM+fd;kW [kM+h gksrh

gSA u`R; nks iafDr ds xhrksa ij vk/kkfjr gksrk gSA os iz'uksRrj ds :I esa xk, tkrs gSA eqfj;k djrk u`R; esa vkxs&ihNs tkus dh yksp cgqr gh lqUnj vkSj euHkkou gksrh gSA

c?ksyh djek

djek xhr xkrh laxhrk flUgk

c?ksy[kaM esa fuokl djus okyh xksaMª tkfr] tks djek ukprh gS] mls ^^c?ksyh djek** dgrs gSA c?ksy[kaM esa Hkh djek dh i`"BHkwfe ogh gS tks vU; LFkkuksa esa gSA c?ksyh djek ds Lo:Ik ,oa jpuk es vU; djek 'kSfy;ksa dh vis{kk fHkUurk gSA ;gkW ds djek esa urZdx.k

nks nyksa esa igys vkeus&lkeus [kM+s gks tkrs gSA ekWnj esa Fkki iM+rh gS vkSj ,d ny djek xhr xkrk gS rFkk nwljk ny mls nqgjkrk gSA dqN nsj rd xk;u vkSj oknu dk ;gh Øe pyrk jgrk gSA fQj ekWnj ij iqu% ,d yEch Fkki iM+rh gS vkSj djek u`R; ds fy, in lapkyu izkjaHk gks tkrs gSaA c?ksyh djek esa urZdksa ds ?kqVus o{kLFky ij dh vksj vkrs gSA ekuks ?kqVus o{k&LFky dks Nwus dk iz;kl djrsa gksaA iSjkas dks mBkdj >qykrs gw, ,d ckj nkbZ vkSj ,d ckj ckbZ vksj j[kdj] dej esa yksp vkSj flj fks >qdkdj urZdx.k ukprs gSaA u`R; dh ;g vko`fRr v/kZ ?ksjs esa gksrh gSA ,slk yxrk gS tSls ,d nwljs ds vWxwBs dks Nwus dh gksM+ gks jgh gSA c?ksyh djek nks izdkjksa esa ukpk tkrk gSA ,d djek >wy vkSj nwljk djek ygdhA bl djek esa Hkh L=h&iq:"k leku :Ik ls Hkkx ysrs gSA u`R; ds lkFk djekxhr izeq[k :Ik ls xk;s Tkkrs gSA urZd xhr xkrs gq, chp&chp esa vkokt yxkrs

gSaA dHkh&dHkh loky&tokc ds xhr Hkh xk;s tkrs gSaA

cLrj dk ekM+h djek [kykSVh {ks= dk lygh ;k [kyrh djek ,oa eaMyk dk cSxkuh djek] Hkfj;ku djek] dksjck djek viuh tkrh; ekU;rkvksa vkSj ijEijkvksa ds vuqlkj izpfyr gSa] fdUrq djek dh lokf/kZd 'kSfy;kW eaMyk ftys esa fuokl djus okyh xksaM+ tkrh esa ikbZ tkrh gSA izeq[k 'kSfy;ksa ds uke bl izdkj gSa %&

1- djek >wej
2- djek ygdh
3- djek yaxM+k
4- djek jkxuh
5- djek Bk<+k
6- djek >qyeh

blh rjg eaMyk ftys dh gh cSxk tu tkfr ds cSxkuh djrk dh 'kSfy;kW bl izdkj gS %&

1- djek [kjh
2- djek [kki
3- djek yq>dh
4- cSxkuh djekA

eaMyk ftys esa gh ^^fofp= fdUrq lR;** ifjikVh dk mYys[k djuk djek u`R; ds pqEcdh; vkd"kZ.k ds lanHkZ esa lkef;d ,oa vuqdwy gksxkA eaMyk ftys esa djek dh yksdfiz;rk bruh O;kid gS fd djek u`R; ds ek/;e ls thou lkFkh dk p;u Hkh dj fy;k tkrk gSA eaMyk ftys dh fuokl rglhy esa ,d Lfkku gS ^^xkSjke**A tgkW izfr o"kZ ikS"kZ ls ek?k dh vof/k esa ,d o`gr esys dk vk;stu gksrk gSA bl esys ds izeq[k vkd"kZ.k djek u`R; vkSj djek xhr gh jgk djrs gSA dksus&dksus ls ;qokvksa ds ny djek dh cgkj esa lfEefyr gksus ds fy, esys esa vkrs gSA esys esa izfrfnu lEiw.kZ jkf= djek gksrk gSA ;qokvksa ds eq[k ls QwVrs djek ds J`axkfjd cksy rFkk ekWnj vkSj fVedh dh Loj ygjh ls xkSjke esys dh NVk ns[krs gh curh gSA jkf= esa rhljs igj rd djek u`R;&xhrsa dh J`axkfjd Hkafxek bruh c<+ tkrh gS fd m"kkdky ¼lqcg½ ds vkrs&vkrs vusd ;qok tksM+s iz.k; lw= esa cakdj lw;Z fdj.k izLQqfVr gksus ds iwoZ esys ls iyk;u dj tkrs gSA foo'k gksdj ekrk&firk muds fookg jhfr&fjoktksa ds vuqlkj djrs gSA ;g Øe

laiw.kZ esyk&vof/k esa pyrk gSA foxe nks n'kdksa ls cnyrs ifjos'k ds lkFk vc bl dkSrwgy iw.kZ fØ;k esa ifjorZu gks jgk gSa bl laosnu'khy izFkk esa vis{kkd`r deh vkbZ gSA

djek u`R; ds fy, le; dk dksbZ ca/ku ugha gksrk gSA volj dh ryk'k ugha dh tkrh gSA fdlh laxh&lkFkh dh izrh{kk dh vko'drk ugha gksrh gSA eu esa meax mBrh gks] gksBksa ij xquxqukgV vkrh gks] 'kjhj esa mYykl dh rjaxs mRiUu gksrh gksa rks nwj f{kfrt ls ekWnj ij Fkkki fVedh dk fVdksjk lqukbZ iM+us ij eathjk vkSj ckWlqjh dh rku ds lkFk djrk xhr eqag ls QwV iM+rs gSa vkSj iSj fFkjdus yxrs gSA eu djek u`R; esa exu gksus yxrk gSA dgha tokc&loky rks dgha dsoy lkekU; djek xhr /kkjk izokg pyrs gSA vkSj uj&ukjh djek u`R; dh vkstiw.kZ y; esa >we mBrs gSaA djek u`R; dh eLrh ds {k.k ns[krs gh curs gSaA blesa lc dqN LokHkkfod gksrk gSA dgha dksbZ jkx&}s"k] Ny&diV dh cw rd ughA dgha dksbZ feykoV ughaA o"kkZ _rq esa vo'; ekSle xr vlqfo/kk xr

vlqfo/kk ds dkj.k u`R; vk;kstu esa dqN deh vkrh gSA

djek u`R; LQwfrZ vkSj izsj.kk dh dqath gSA fnu Hkj [ksr&[kfygkuksa ouksa esa dke djus ds ckn Fkdk&ekWnk xzkeh.k tc C;kjh ds ckn djek u`R; esa foHkksj gksrk gS] rks mls vkus okyh ubZ lqcg dh LQwfrZ vkSj ifjJe ds fy, izsj.kk feyrh gSA djek u`R; esa yhu gksdj urZd dqN {k.kksa ds fy, lkjs nq%[k nnksZa dks Hkwydj ,oa muls Åij mBdj vkuan yksd esa [kks tkkrk gSA tc djek u`R; vkjEHk gksrk gS] rc lqnwj ou izkUrksa esa djek xhrksa vkSj ekWnj dh /ofu xwatrh gSA lkjh&lkjh jkr djek u`R; gksrk gS vkSj vkuUn dk jlkLoknu djrs gq, lgh vFkksZ esa ;s vkfnoklh thou thrs gSA meax vkSj mRlkg djek u`R; dh Loj ygfj;ksa ds mrkj&p<+ko esa ifjyf{kr gksrk gSa lkekftd tu 'kfDr dks ,d lw= esa fijks;s j[kus dk ;g ,d vPNk ek/;e gSA ;g og fuf/k gS tgkW Fkdh gqbZ ftanxh ds iSj ubZ thou psruk ds lkFk fFkjd mBrs gSaA

Hkq¡bgkjh djek

bls fcykliqjh djek ds uke ls Hkh tkuk tkrk gSA ;g fcykliqj ftys esa fuokl djus okyh Hkq¡bgkj tkfr dk u`R; gSA bl u`R; esa urZdx.k igys [kM+s gksdj xhr xkrs fQj u`R; djrs gSaA dV?kksjk] ilku {ks= ;k mlds vklikl bl u`R; dk vf/kd pyu gSA u`R; iafDr ;k v/kZ ?ksjs esa gksrk gSA Hkq¡bgkj tkfr }kjk ukps vkSj xk, tkus ds dkj.k bldk uke Hkq¡bgkjh djek iM+k gSA Hkq¡bgkj tkfr ^^/kje nsork** dk iwtk mRlo eukrs gSaA mudk fo'okl gS fd /kje&nsork] dje&o`{k esa fuokl djrs gSaA /kje nsork dh iwtk esa mudh vkLFkk gS fd nso /ku&/kkU;] Qy&Qwy] dUn ewy ls mudh dksfB;k¡ Hkjrs gSA mudk thou lq[kh cukrs gSA blh eaxye; Hkkouk ds lkFk J)k lqeu vfiZr djrs gq, Hkko foHkksj gksdj u`R; djrs gSa] tks jkr Hkj pyrk gSA izkr% dky

esa ekU;rkvksa ,oa fof/k&fo/kku ds lkFk dje o`{k dk foltZu fd;k tkrk gSA

nsokj djek

nsokj xksaM+ vkfne tkfr dh mi tkfr ekuh tkrh gSA ranuqlkj muds xks= Hkh xksaM+ tkrh ds leku ik, tkrs gSa] tSls& usrke] ejdke] dqatke vkfnA nsokj ewy :Ik ls ?kqeUrw tkfr gS] tks uxj] dLck ;k xkWo ds ckgj rEcw yxkdj Msjs esa ,d vof/k rd jgrh gSA rnqijkUr izLFkku dj ysrh gSA budh viuh laLd`fr fo'ks"k gSa] ftlesa yksd laxhr] u`R; dk izeq[k LFkku gSaA budh vkthfodk dk lk/ku gSa] yksd u`R; ,oa xhrA gksyh] tWokjk]

gjsyh vkSj firj R;kSgkjksa ds leku gh budk djek R;kSgkj gksrk gSA djek u`R; izeq[k :Ik ls blh R;kSgkj esa ukpk tkrk gS rFkk o"kZ Hkh fdlh fdlh volj esa djek u`R; djrs gSaA djek R;kSgkj ds ihNs budh Hkkouk ,oa ekU;rk gS fd ^^dje lSfud }kjk Hkxoku dks fn, x, deZ laca/kh opu ds ikyu esa djrk R;kSgkj vkSj djek u`R; vk;ksftr gksrk gSA nsokj tkfr djek R;kSgkj cSlk[k ds efgus esa eukrh gS] tgkW og vius Msjs esa ukjk;.k nsork dh iwtk& vpZuk djrh gSA vDrh ¼v{k; r`rh;k½ nsokj tkrh ds fy, cM+k gh 'kqHk fnu gSA og vius nsork dh iwtk blh fnu lEiUu djrh gSA

nsokj djek vf/kdrj ,dy ;k ;qxy gksrk gSA nsokj djek urZu esa ;qorh dh Hkqfedk izeq[k gksrh gSA ekWnj] dsadM+h ,oa lkjaxh blesa eq[; ok| gksrs gSA okndx.k ,d vksj [kM+s gksdj ctkrs gSA ,d ;k nks ;qofr;ksa fQjduh yxk&yxk dj xhr xkrs gq, u`R; djrh gSA bl u`R; esa iSj ,oa gkFkksa dh eqnzk,a fo'ks"k :Ik ls ifjyf{kr gksrh gSA u`R; esa ;qofr;ksa dk lkFk chp&chp esa ;qod nsrs gSA nsokj djek ds xhr J`axkfjd vf/kd

gksrs gSA djek esa chp&chp esa J`axkj ijd gkL;kfHku; tks gksrs gSaA ;qodksa dh vis{kk nsokj efgyk,W vf/kd okpky ,oa dBksj :[k dh gksrh gSA vr% buds djek xhrksa esa Hkh n`<+rk vkSj vkRe fo'okl dh >yd feyrh gSA nwljs 'kCnksa esa nsokj efgyk,W vD[kM+ vkSj vYgM+ gksrh gSA

nsokj efgyk,W djek ds vfrfjDr ukpk dh fl)LFk yksd dykdkj Hkh gksrh gSA

nsokj tu&tkfr esa izpfyr djek ykd uR; ,oa ykd xhrksa dk

lkLdfrd v/;;u

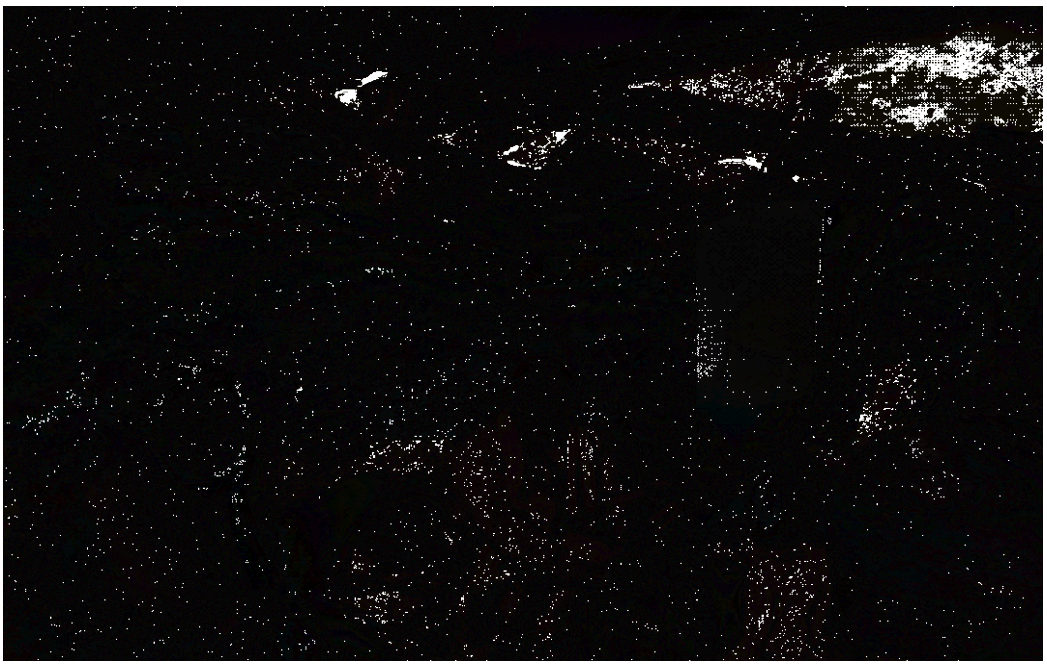

Vkjtu ejdke ,o l[korh ejdke l nokj lLdfr d ckj e ppk djr g;

समाज के साथ लोक गीतों का विशेष संबंध हैं और समाज में इसके विभिन्न कलाएँ अथवा संस्कार, धर्म, रीति–रिवाज, रहन–सहन, खान–पान, सामाजिक रीतियों वेशभूषा और आचार–विचार को परिष्कृत करती है। वे जीवन के सामाजिक दृष्टिकोण को प्रतिविम्बित करती है। समय–समय पर वह अपनी संस्कार व विचारों यहां तक की स्त्री पुरूषों का उनके आचार–विचारों, समाधान, परिधान तथा मनोविनोदों का जीता जागता चित्र लोकगीतों में उपलब्ध रखा है। जन्म से मृत्यु और अर्थी से लेकर पालकी तक के गीतों में जीवन के सभी मनोरंजन दृश्य मिलते है। इन्हीं लोक गीतों के माध्यम से किसी भी समाज के प्रचलित विभिन्न सामाजिक क्रिया–कलापों का अध्ययन कर सकते है। इनमें नृत्य, गीत, स्नान, उद्यान क्रीड़ा, धार्मिक और सामाजिक उत्सव, प्रसाधन आदि अनेक का उत्कीर्ण हैं। लोक जीवन से लोक गीत को कभी पृथक नहीं किया जा सकता।

लोक गीतों में लोक संस्कृति के जीवन के सहज चित्र प्राप्त होते है संस्कृति मानव के समय प्रयास के उस अंश का उद्घोषक हैं जो समृष्टि के निरंतर गतिशील है और जिसमें उन प्रयासों से अद्भुत उपकरण भी सम्मिलित है। भारतीय लोक जीवन

धर्मावंलबित हैं जन्मपूर्व से होकर मृत्यु के बाद तक यहां का जीवन विभिन्न संस्कारों में बंधा हुआ है।

छत्तीसगढ़ अंचल में निवास करने वाली देवार जातियों का जीवन इस प्रकार के संघषों में व्यस्त रहता हैं और व्यतीत होता है जिसमें विविध कार्य का एक अहनवार्य चक्र में आते जाते रहते हैं। हमारा देश कृषि प्रधान देश होने के कारण लोक जीवन कर्म से प्रभावित हैं देवार के कार्य क्षेत्र में व्यस्त श्रम परिहार हेतु अनायास ही श्रम गीतों का सृजन कर लेते हैं।

देवार लोक गीतों में लोक जीवन की मधुर झांकियां मिलती है देश के सभी समस्याओं का उद्घाटन लोक गीतों में मिलता है। लोक गीत समाज के दर्पण हैं देवार लोक गीत एवं लोक नृत्य सरल एवं रोचक खुलापन होते हैं लोगों पर आसानी से प्रभाव डालते हैं। देवारों के जीवन में संगीत का अत्यन्त महत्व है इसका प्रमुख कारण यह है कि देवारों को जीवकोंपार्जन के लिए कठोर श्रम करना पड़ता है। अभाव ग्रस्त एक जीवन की विषमताओं को भूलने के लिये वे संगीत एवं गीत का सहारा लेते है, देश के लोक गीत अत्यन्त हृदयग्राही, संक्षिप्त, सरल, सहज, सुन्दर एवं संगीतमय रहते हैं ये ही गीत देवार समाज के अतीत का वैभवपूर्ण संस्कृति को उजागर करते है वे अपनी अमीट छाप देते हैं। अथवा राज्य और जनता दोनो का कर्तव्य होता है कि वे जीवन में सौन्दर्य, सौहार्द तथा शांति के लिए लोक–गीतों के विकास पर खास ध्यान दें।

हम देवारों के उन लोकगीतों लोकनृत्यों का उद्धारित कर रहे है जो सामाजिक जीवन से करमा लोकगीतों लोकनृत्यों का रचना करते है गीतो की संख्या तो असंख्य है और वहीं गीत देवार के सामाजिक जीवन के हर पहलू से जुड़ा हुआ है किन्तु हम देवारों में प्रचलित उन गीतों को ही विकसित कर रहे है जो महत्वपूर्ण है और जिनका संबंध सामाजिक जीवन में अनिवार्य है और जिनमें भावों व विचारों की अभिव्यक्ति है।

संस्कार गीत– अन्य जातियां की अपेक्षा हिन्दू जाति संस्कार प्रधान है देवार जन जाति में संस्कारेां को अपूर्ण छोड़ना धर्म के विरूद्ध माना जाता है भारत में सोलह संस्कार माने गये है प्रत्येक संस्कार से कुछ गीतों की संख्या असंख्य है वहां देवारों में सम्मिलित प्रमुख संस्कारों जन्म, विवाह और मृत्यु से संबंधित गीतों को दर्शाया जा रहा है। इन प्रधान संस्कारों के अन्तर्गत अनेक उपविभाग है तीनों संस्कारों के अनेक धर्म को सामाजिक जीवन में निर्वाह करना अत्यन्त आवश्यक है।

लोक गीत सामाजिक जीवन में विशिष्ट रूप से जुड़े है। गर्भपात से लेकर जन्मे शिशु के वर्षगांठ मनाये जाने तक के गीतों को प्रस्तुत करते ही देवारों में धर्म के समय सोहर गाने की रीति नहीं है पुत्र प्राप्ति पर परिवार के बीच ज्यादा खुशी मनाई जाती है परन्तु गीत गाने की कोई प्रथा नहीं है।

देवार जन–जाति विवाह को जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण संस्कार मानते है, वर पक्ष में बातचीत से लकर विदाई तक के गीत

गाये जाते है इस संस्कार को बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। विवाह में गारी दी जाती है। जिन्हें भड़ौनी कहते है नेग के हर कार्यक्रम के अलग–अलग लोक गीत होते है।

विवाह के सभी लोक गीत अति महत्वपूर्ण होते हैं विवाह का एक गीत ''करसा करवा'' गोदने का गीत कहलाते है।

गीत–

परघनी बारात – बाजा रे बाजे दमऊ नइये होइ रे दमऊ नइये

तोर घर के मुहाटी मा समऊ नइये होई रे होई रे।

चूरमाटी – तोला माटी कोड़े ला नइये आवेय मी धीरे–धीरे
धीरे धीरे अपन कन्हीया ला ठील धीरे–धीरे।
तेल चघ्घी– एक तेल चढीगे, ओ हरियर हरियर
मड़ना मा दुलरू तोर बदन कुम्हलाय।
दे तो दाई दे तो मोला अस्सी ओ रूपय्या
मोजा अस्सी ओ रूपय्या
सुन्दरी ला लालेब ओ बिहाय ओ दाई

भडौनी – आमा पान के बीजना हालत डोलत आमरे
किसबीन के बेटा हा बारात लेके आय हो।

टीकावन – जबही गोपाल चले मधुबन को
घर अंगना ना सुहाई जी हा जू घ्घर अंगना ना सुहाई।
हलर हलर मंडवा हाले ओ

खलर खलर दाईज पड़े।

विदाई – अलिन गलिन मा दाई रोवय दाई रोवय
ददा रोवय मुसधारे ओ ददा रोवय मूसधारे।

छत्तीसगढ़ के देवार, संस्कारों को धर्म से निहित मानते है धर्म के आधार वर ही संस्कारों की कल्पना करते है देवार सामाजिक होते है अपने धर्म देवी–देवता की अराधना का पूजा पाठ करते है वह अधर्म के डर से धर्म की रक्षा करते है समय–समय पर भगवान की पूजा तथा प्रार्थना कर अपने मांगजिक जीवन विवाह करता है कोई मांगलिक कार्य करने से पीले पूजा, देवार अवश्य करते है कि में धार्मिक लोक गीत जो पर्व त्यौहार या देवी की पूजा करते वक्त अवश्य ही है।

गीत – हार बिजना रामा हार बिजना –2
मैया के माये पर टीकली बीराजे टीकली बरे
जग जोत ललना राम पढ़ेव हार बिजना
मैय्या के नाम पर नथनी बीराजे नथनी घरे
जग जोत ललना राम पढेव हार बिजना –2
हार बिजना राम हार बिजना। –2
खेलत राहय कदम का बीरघा
आने लगा, कदम के बीरघा में जाकर
कर किसनों लाया है। –2
ओ बसी सिरजाय, हे खेलत हे बीरहत जाय
अस्सी लाख तेरी गैया चरत है,

बावन लाख तेरी भैसी ना,

दूध दही के पूरा बोहागे केह नंद लाला चोरी करें।

सामाजिक जीवन में प्रत्येक क्षेत्र के समाज में दशहरा, दीपावली, होली, तीज, त्यौहार हरेली, गणेश पक्ष आदि अनिवार्य रूप से मनाये जाते है। देवार तीजा नहीं मनाते है। जीतियां त्यौहार, कुंवार मास में मनाया जाता है, जंवारा तथा रामनवमी जैसे पर्व मनाते है। देवारों का संकट महत्वपूर्ण होता है। होली देवारों का प्रमुख पर्व है। प्रायः छत्तीसगढ़ के देवार हर पर्व को बड़े धूम–धाम से मनाते है इस समय लोक गीत गाने की प्रथा है।

देवार एक ओर से धार्मिक अनुष्ठान से जुड़े होते है तो दूसरी तरफ सामाजिक रीति–रिवाज से इन पर्वो एवं त्यौहारों के समय इनसे संबंधित पर्वो के गीत को गाये जाते है।

होली में देवार कबीला के लोग करमा नृत्य करते हैं, मांदर की थाप पर चहक उठते है।

अयोध्या में राम खेलय होरी : होली :
बीचय बीराजय जनक नन्दनी
चहुकीत चारू चलय गोरी
अयोध्या में राम खेलय होरी,
गगन बादले बादर छायें
कीच मच्यों केसर रोरी
श्री रघुराज राज अलबेलों

मातों फीरत लीये झोरी

अयोध्या में राम खेलय होरी।

लोक गीत जो देवारों के सामाजिक जीवन में संबंध रखते है।

शगुन– अपशगुन – प्रत्येक समाज में किसी शुभ कार्य करने के पूर्व शगुन देखा जाता है देवार जाति में भी शगुन अपशगुन को मानते है जैसे बिल्ली का रास्ता काटना, खाली घड़ा देखना, झीक पड़ना आदि इनमें से कोई भी लक्षण दिखाई दे जाता है तो देवार अशुभ मानकर थोड़ी देर के लिये अपना कार्यक्रम को बंद कर देते है अतः हम देखते है कि इन छोटी–छोटी बातों से भी संबंधित लोक गीत अपने सामाजिक जीवन में मिलते है और इससे संबंधित गीत भी प्रायः है।

पतरी सी घनियां पनियां खो निकरी,

धरई में असगुन होन लगे

पहली झीक मोर अंगना में आई है

दूजी झीक दुआर भई

तीजी झीक जो कुअना पे भई है,

सिर की गगरी फूटि नई।

देवार अपने लोक गीतों में मनोरंजन से संबंधित लोक गीत गाते है इनके निम्न में व्यवसाय से संबंधित गीत भी होते है।

मनोरंजन गीत

ददरिया – ददरिया गीत देवारों की अत्याधिक लोकप्रिंय गीत है ददरिया श्रृगारिंक हैं छत्तीसगढ़ में ''ददरिया'' को लोक गीतों की रानी कहा गया है। देवारों में ददरिया के लोकप्रियता का कारण यह है कि बच्चे बूढ़े और युवा वर्ग के लोग ददरिया गीतों को गाते है इस गीत को देवार अवकाश के क्षणों में मनोरंजन की दृष्टि से खुशी के या अन्य अवसरों पर गाते है।

गीत–

मुखड़ा – ये भंवा के मारे दहरा के मछरी
ला दहरीन भंवा के मारे। –2

अंतरा – आमा के पत्ता डोलत नई ये बड़े दिन
का होगे तोला के बोलत नईय। –2
डाला ओ डाला मोटर डाला ओ SSS
गावत हावय ददरिया बदन काला। –2
मारे ता मछरी हेरे ला सेहरा
का करे आगु के चेहरा रे होय रे होय – 2
भाते ला खाय अढाई कौरां
तोला बैठे ला बुलाय बड़ई चौरा –3
ये भंवा के मारे .....

स्थाई – दिवाना हाई गई दिवाना ओ मोर राजा
दिवाना होई गई – 2

अंतरा – गांजा पिये तम्बाकूर पीये,
भांगा खाके होई गई अहो मोर,

राजा दिवाना हो गई।
आसो पीये दुबारा पीये भंगा खाके
दिवाना होई गई।
अहो मोर राजा दिवाना हो गई।

स्थाई – संझां के बेरा तोरई फले रे
तोर चिमटी भर कन्हिया तो ही ला खुलेरे –2
फूटहा रे मंदिर कलश तो नईये,
दु दिन के अवइया दरस तो नईये,
बरछी के मारे बछर दिन जाय
बोली के मारे जनम दिन जाय।। –2

करमा – करमा देवार जाति की पारम्परिक लोक नृत्य गीत हैं ये करमा गीत देवारों के आवाहन गीत है कहते हैं कि एक समय देवारों पर विपत्ति आई थी तब ईश्वर ने अपने विपत्ति दूर करने के लिए पूजा अर्चना करते थे तब से यह नृत्य गीत करमा का जन्म हुआ है। देवार जाति के मुख्य रूप से पुरूष एवं महिलायें देवार करमा नृत्य ही करते है।

करमा – झूमर जा रे पड़की झूमर जा,
धमधा के राजा भाई तोर कइसन लागे रे। 2
लाबर लोर लोर तीतुर मा घोर घोर
राय झुमा झुम बांस पान हसारे करेला पान।
झूमर जा।

करमा – माते रहीबे माते रहीबे माते रहीबे गा

माते रहीबे माते .....

गढ़ीया गांजा ला पीके माते रहीबे

तेहां माते रहीबे गा मोर भइया

गढ़ीया गांजा ला पीके माते रहीबे

अंतरा – बैइला ला डील देबे धान खाही गा

येदे धान खाही गा अलबेला मोर

धान खाही गा

तोरेच खातीर ये दे मोर जान जाही

गढ़ीया गांजा ला पीके माते रहीबे।

करमा – मयारू के गीत

मंगनी मा मांगे मया नई मिलये रे मंगनी मा । 2

नजर मिलाके ते खेल डारे पासा रे –2

चोला मगन कुछु पाये के आशा, रे – मंगनी मा।।

मया के अंचरा मा काजर के कोठी रे – 2

कतको लुकाबे तभो दाग परही रे – मंगनी मा।।

माया बर पीरा बर माया

नई लागे काकरोबर कोन्नोल दया रे मंगनी मा।।

चौराया गोंदा – करमा

चौरा मा गोदा रीसया, मोर बारी मा पाताल रे, चौरामा गोदा,

लाली गुलाली रंग छिंचत आबे राजा मोर छिचत आइबे

मैं रहिथों छेंव पारा म पूछत आबे।। 1

परछी दुबारी मा ठाठेच रइहो।। 2

चौरा मा गोंदा रसिया, मोर बारी मा पाताल रे

चौरा मा गोंदा।

चिरई बोलय – करमा

आधी रतिहा, धार बिच नदिया

चिरइय बोले ..... ।। मैना बोले

बड़े भिन्सरिहा सूनो जी मेर बतिया।।

अन्तरा – सुख ले सोवल अऊ हांसल सपना मा

गजरा के फूल असन लागत नयना मा

घेरी बेरी देखव ता टूटत छतिया –।। 1

करमा – लहर बुन्दीया घुघरू बलम तोहे सोहे ना

बासी ला खाये ऊघांसी लागें।

अन्तरा – तोर मया के मारे रोवासी लागे।

खाये ला पान कर डाले मुंह लाल

मोर पीरीत ला बढ़ाके कर डाले जी के लाल

करमा – उड़ती चीरड्या ला गोली में टीपे

ये गोली मा टीपे राम उड़ती चीरइया ला गोली मा टीपे

कायेली कस बोली मार गुरतुर लागे रे।

रीश्मा मीरचा कस चुर चुर लागे

सेमी मा जैसे लगे है मैनी गा

तोर सेती घर बन मा होगे हे बैइरी गा।

करमा – ये रेऽऽ चंदा चार घड़ी के रे
बादर मा छीप जाही चंदा चार घड़ी केरे।

अन्तरा – घर ले आंखी चोरा के गीइयां।
हमन हा सकलायेन मन भर ले सब खेलेन
कुदेन सब झन ला भरमायेन
चंदा चार घड़ी के।
चिरई चीरगुन मन हा सिखे हमर मन ले गाना
कतेक सुध्धऱ जगहा लागे नई हे तोला आना।
चंदा चार घड़ी के।

करमा – मदरिहा बजा के मादर करमा के ताल मोरे मन ला बेधे रे।
मया में फंसा के तै तो बिसर गये रे बैइरी
परबुधिया जुलूम करे रे।
हाट जावस बाट जोहस तै हा बीच खार आमा अमली के छांव
सुरता ल करे उडी तैहा उही गांव होंगे
बदनामी तेरे पाछू मोर नाव।

गोदना– गोदना गीत देवार जाति की महिलाओं का लोक प्रिय गीत है। जिसे स्त्रीयां ग्रामीण परिवेश में घूमघमू कर ग्रामीण महिलाओं के अंगों पर गोदना गोदने का कार्य करती है एवं साथ में गीत भी गाती है। गोदना का कार्य छत्तीसगढ़ में प्रायः गोड़ एवं देवार जाति की स्त्रियां में देखने को मिलती है।

स्थाई तोला का गोदना ला गोदव ओ

मोर दुलवरीन बेटी।

तोला का गोना ला गोदव

अन्तरा सबके दीये पैसा कौड़ी मोर गोडिन के गोदना

तोला को गोदना ला गोदव ओ मोर मायारूक बेटी।

गोदना गोदा ले रीठा ले ले ओ

अवो दाई आयेव गोवहारिन तोर गांव मा

मोर गोदना चुक ले उपके नाक मा तीन फुलिया ओ।

राम लखन हिरदे गोदाले दाढ़ी मा चिटकुलिया वो

अगले बगल मा टिपका ले ले वो अवो दाई।

गोदना हमर छत्तीसगढ़ के चिन्हा हवय चुकले वो

बिन गोदना के बेटी माई दिखये वो उदुकले वो

पइसा नइये सेर चाऊर दे दे वो

गोदना गोदा ले रीठा ले लेवो। –2

nokj tu&tkfr e ipfyr ykd xhrk] ykd uR;k ,o ykd xkFkkvk dk lkLdfrd v/;;u

छत्तीसगढ़ी लोक गाथाओं का संगंध मध्य युगीन 14 वीं, 15वीं, से 19वीं श्ताब्दी के मध्य काल में माना जाता है। छत्तीसगढ़ का जो इतिहास उपलब्ध हैं इससे यही विदित होता है कि

छत्तीसगढ़ी लोक गाथाओं का संबंध किसी न किसी घटना से हैं इनके चरित नायकों को इतिहास में कही पता नहीं और न इनका वर्णन शुद्ध इतिहास की कसौटी पर उतरता हैं इन गाथाओं में इतिहास की अपेक्षा कल्पना का बाहल्य हैं। इसलिये लोक गाथाकार अज्ञात हैं।

इन गाथाओं में वर्णित घटनाओं के इतिहास में थोड़े संकेत ही मिलते हैं जिनकी प्रमाणिकता आज तक विवादास्पद हैं।

प्रायः समस्त लोक गाथायें समाज के निम्न वर्ग में प्रचलित हैं इनके गाथायें सच्चे सरल सीधे होते है। इनमें नाई, धोबी, गाड़ा, धमनियां उड़िया, चेरी आदि शुद्रो ओर अत्यणों के जीवन एवं कार्यो क व्यापक चित्रण मिलता है।

छत्तीसगढ़ अंचल में निवास करने वाली देवार जन–जाति के पास लोक–गाथाओं का विशाल भंडार हैं अगर ऐसा कहे तो कोई अतिश्योक्ति पूर्ण बात नहीं होगी। किन्तु वर्तमान में कई लोक गाथायें विलुप्त प्रायः हो गई हैं या विलुप्त होने की कगार पर हैं।

देवार जाति म.प्र. के छत्तीसगढ़ क्षेत्र में सर्वाधिक है। देवार लोक गाथाओं को परम्परागत गाते है रायपुरिया देवार इन लोक गाथाओं को सारंगी की संगल पर गाते हैं एवं रतनपुरिया देवार इन्ही गाथाओं को ढुंगरू वाद्य के साथ गाते है। भारतीय लोक परम्परा में इस श्रेणी के जो वाद्य पाये जाते हैं वे राजस्थान में रामहत्था एवं बाना, गुजरात में बायला, महाराट्र में चिकारा आदि नामों से जानें जाते है।

ढुंगरू देवारों की सारंगी की अपेक्षा काफी बड़ा होता है। ढुंगरू की बनावट तम्बूरे जैसी होती हैं, आकार में काफी छोटा होता हैं। इन्हीं वाद्यों की भिन्नता के कारण ही रतनपुरिया देवार ढुंगरू वाले देवार तथा रायपुरिया देवार सारंगी वाले देवार कहलाते हैं। हत्थे के ऊपर तारों पर घुघंरू बंधे होते हैं जो ताल का काम करते है। सारंगी के माध्यम से जो ध्वनि लोक गाथाओं गाते वह ध्वनि ऐसी प्रतीत हैं मानों गीत के साथ नृत्य भी चल रहा हों, देवार लोक गाथाओं में पंडवानी, करमानी, गोडवानी लम्बी गाथायें हैं जो कई–कई घंटों तक गाई जाती हैं। गांवो में घूम–घूम कर देवार इन गाथाओं को लगातार प्रस्तुत करते हैं। बदले में इन्हें अन्न, पुराने वस्त्र व नगद रूपया पैसा प्राप्त होता है। गोपाल राय विढिया, दशमत ओडनीन, सीताराम नायक, हीराखान, नगेसर कहना, अहिमन रानी, केवला रानी, रेतवा रानी एवं राजा वीर सिंह की गाथायें भी देवार अपनी सारंगी के साथ गाते हैं।

देवारों की ये गाथायें पंवाड़ा कहलाती हैं। रामसिंह का पंवाड़ा, सरवन गीत, बोधरू गीत, फुलबासन, फुजकुंवर आदि गाथायें भी देवारों की परंम्परागत गाई जाने वाली गाथाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

लोक गाथा आदि संग्रह में बहुत विशाल क्षेत्र हैं। देवार जाति में हर संस्कार हर उत्सव के लोकगाथा एवं प्राचीन गाथा, वीर गाथा, प्रेम गाथा, इस क्षेत्र में अपूर्व निधि भरी पड़ी हैं,

फिर भी कोई संग्रह आज तक नहीं हुआ हैं। इस वजह से मैने यह लोक गाथा को संग्रहित करने का प्रयास किया है।

मेरा अनुभव हैं कि संग्रहकर्ता देहात में जाकर लोगों में एक दिन में होकर सरल और सस्ती कीर्ति का लोभ छोड़कर अच्छी चीजों का संग्रह कर सकता है। भले ही संग्रहकर्ता को एक स्थान पर दस, बीस दिन रहकर काम आरम्भ करना पड़े।

लोक गाथा, संग्रह के लिए गांवों में जाकर जनता के बीच रहकर जनता के विश्वास पात्र और मित्र बनना पड़ता है जनता के सुख–दुख को समझकर जनता की हमदर्दी रखना पड़ती हैं तब जनता का हृदय खिल उठता हैं और उसकी सुगध लोगो तक बिखरता है।

लोक गाथा के संग्रह का काम कष्ट साध्य हैं परन्तु सुरूचि प्रदर्शित करने वाले लोग गाथा संग्रह और भी कठिन हैं। मेरा अपना अनुभव हैं। लोक गाथाओं में कई बार हमें अच्छा काव्य देखने को मिलता हैं।

देवार गाथा गायकी का भविष्य बहुत आगे तक जाता दिखाई नहीं पड़ता क्योंकि देवारों का परम्परागत आर्थिक आधार छिन्न–भिन्न हो चुका हैं। आने वाले दस बीस सालों में देवारों के पास सुरक्षित लोक गाथायें भी लुप्त हो जाने की आशंका हैं क्योंकि लम्बी गाथा होने के कारण नई पीढ़ी में ऊब की भावना आ गई हैं। फिल्मी गीतों के रूप में बदल गई जिन्हें सम्भवतः देवार कलाकारों को किसी किस्म की मदद देकर एक लम्बी संस्कृतिक परम्परा को

जीवित रखने का प्रयास किया जा सकता हैं जब वेदकालीन ध्रुपंद गायकी को पूर्नजीवन मिल सकता हैं तो वह देवारों की कला तो अभी भी लोक में जीवित हैं उसे क्यों नहीं बचाया जा सकता है।

गीत, वाद्य, नृत्य और गाथा का आंरभ आति प्राचीनकाल में हुआ। धार्मिक तथा लौकिक गाथाओं को अपने कला गायिकी के माध्यम से सरल एवं सुगम बनाने की परिपाटी हमारे गायक कलाकारों ने अपनाई उन्होने रामायण, महाभारत तथा छत्तीसगढ़ में ही नहीं भारत एवं प्रदेश के कुछ भागों में भी अमर कर दिया हैं।

दुर्ग जिले के छोटे से गांव गनियारी में निवास करने वाली प्रसिद्ध पंडवानी गायिका पद्म श्री से अंलकृत श्रीमती तीजन बाई एवं श्री पूनाराम निषाद श्रीमती ऋतु वर्मा ज्वलंत उदाहरण हैं।

यहां पर हमने देवारों द्वारा गाई जाने वाली प्रमुख लोक गाथाओं का वर्णन किया है।

प्रमुख लोक गाथा –

1- vfgeu jkuh&

अहिमन रानी एक दिन सास के कहने पर अपनी चौदह सखियों के साथ सरोवर में नहाने जाती हैं वहां पर एक व्यापारी से उसकी मुलाकात हो जाती है। व्यापारी उसका घड़ा चुरा लेता हैं वह अहिमन रानी को पासा खेलने के लिए आमंत्रित करता हैं। खेल में वह सभी आभूषणों को जीत लेता है।, इस पर रानी पश्चाताप करती हैं कि मैं अब राजा को क्या जवाब दूंगी तथा रानी

व्यापारी को कहती हैं कि मेरा मयाका दुर्ग राज्य में हैं। इस पर व्यापारी रानी के नये वस्त्र आभूषण और सोने को घड़ा देता हैं रानी जब घर लौटती हैं तब राजा वीर सिंह रानी के नये वस्त्र आभूषण देखकर शांकित होता हैं तथा उसके मायके ले जाता हैं राज्य की सीमा पार करते हुए राजा रानी की बाल पकड़ कर घोड़े की पूंछ से बांध देता हैं और उसे खीचने लगता हैं इस पर अहिमन रानी मर जाती है। उसका व्यापारी भाई इसे मृत देखकर शोक मग्न हों जाता हैं इसी समय महादेव पार्वती की कृपा से अहिमन रानी को पुर्नजीवित कर ससुराल भेजते हैं राजा वीर सिंह उस समय सो रहें थे अतः वह सास के काम में हाथ बटाती हैं उसकी सास उसे नहीं पहचान पाती, वीर सिंह उस व्यापारी से उसकी बहन के विवाह का प्रस्ताव रखता हैं इस पर व्यापारी राजा वीर सिंह से कहता हैं अपनी पत्नी को नहीं पहचान पा रहें हो पुनः अहिमन रानी अपने पति को प्राप्त कर लेती हैं इस प्रकार अहिमन रानी की गाथा में पति पत्नि के प्रेम का वर्णन हैं साथ ही अहिमन रानी की पवित्रता एवं अपने पति के प्रति सतीत्व का वर्णन हैं और इनमें देवी देवताओं के द्वारा पुर्नजीवित करना एक चमत्कारिक घटना हैं छत्तीसगढ़ में इसकी गाथा प्रसिद्ध हैं लेकिन आज कलाकारों द्वारा उन गाथओं को नहीं पाया जाता और न ही हमें सुनने को मिलती हैं वर्तमान कलाकारों से आग्रह करूगीं कि इस गाथा को अपने कंठ से गाकर प्राचीन संस्कृति की धरोहर को सामने लायें और इन घटना क्रमों में वर्तमान नारियों के लिए प्रेरणा दायक भी बनाऐंगे।

2- jok jkuh&

रेवा रानी राजा अग्रसेन की पत्नि हैं एक दिन वह राजा से आज्ञा लेकर तालाब नहाने जाती हैं। रास्ते में सुन्दर फुलबारी देखकर रूक जाती हैं उसकी सहेलियां उससे अलग हो जाती हैं उसी समय युम्बंदुभी राक्षस राजा अग्रसेन का रूप धारण कर आता है और से अपनी कामेक्षा प्रकट करता है। इतने में रानी उसको डांटते हुए महल लौट जाने को कहती है अचानक अंधेरा होने पर वह अपनी इच्छा पूरी कर लेता हैं तब रानी क्रोध से शाप दे देती हैं कि तेरा पुत्र अत्यन्त बलवान होगा यह कह कर वह अदृश्य हो जाता हैं इतने में रानी की सहेलियां ढूंढते हूए आ जाती हैं और कुछ दिनों बाद रानी को पुत्र की प्राप्ति होती हैं रेवा रानी की इस गाथा में नारी की विवसता परिलक्षित होती हैं इस गाथा को बिलासपुर की श्रीमती सुरूज बाई खाड़े द्वारा सुनने को मिलती है।

3- Qy doj&

राजा जगत के पास मुसलमानों का पत्र आता है कि तुम अपना राज्य हमें चुपचाप दे दों। वरना हम युद्ध छेड़ देगें। राजा चिन्तातुर हो उठते हैं। तथा भोजन नहीं करतें, इसी कारण से उनके सिर में दर्द होने लगता हैं तब उनकी बेटी फूल कुंवर अपने पिता से चिंता का कारण पूछती हैं राजा अपनी वृतांत सुनाते हैं

जिसे सुनकर फूल कुंवर युद्ध के लिए तत्पर हो उठती हैं। फूल कुंवर की माता उसे युद्ध के स्थल में जाने से मना करती हैं परन्तु फूल कुंवर माता की बातों को नहीं मानती तथा युद्ध की साज सज्जा धारण करके सेना नेकर मुगलों का सामना करती हैं मुगल सैनिक फूल कुंवर की सेना को देखकर भयभीत हो उठते हैं दोनो में घमासान युद्ध होता है और फूल कुंवर विजयी होती हैं मुगल सैनिक परास्त होकर भाग जाते है।

ये लोक गाथा छत्तीसगढ़ में सुनने को मिलती थी। लेकिन बदलते हूये परिवेश में इन गाथाओं की गायिकी कोई नहीं करता।

4- dY;k.k lgk; dh xkFkk &

कल्याण सहाय की गाथा रतनपुर के सम्राट बहारेन्द्र के पुत्र कल्याण सहाय की वीरता का वर्णन किया गया है। कल्याण सहाय मुगल सम्राट जहांगीर के समकालीन थे। रतनपुर का राज्य स्वतंत्र था। मुगल छत्र छाया में नहीं आया था। मुगल सम्राट जहांगीर ने रतनपुर नरेश महाराजा कल्याण सहाय को आमंत्रित किया। निमंत्रण पाकर कल्याण सहाय बड़े धर्म संकट में पड़ गये कि दिल्ली जाये अथवा नहीं इनकी माता का नाम रानी भवानमती था। माता के सामने दिल्ली जाने का विचार प्रगट किया। माता ने उसे दिल्ली जाने को कहा, वे जानती थी कि कल्याण सहाय दिल्ली जाकर अवश्य ही इस्लाम ग्रहण कर लेगा।

माता को समझा कर अन्त में राजा कल्याण सहाय अपने साथ बाइस राजा और अठारह राजकुमारी को साथ लेकर दिल्ली पहुंचे और सात वर्ष रहें। मुगल सम्राट ने इनकी बड़ी प्रशंसा की दिल्ली में गोपाल राय ने अपने साधारण शक्ति प्रदर्शन में सम्राट जहांगीर को आश्चर्य चकित कर दिया था। कल्याण सहाय एवं उसके पुत्र लक्षमण सहाय के शासन काल में गाथा को लोक गाते हैं। वर्तमान में ये लोक गाथा प्रायः लुप्त हो गई है।

5- lhrkjke ukbd %&

इस गाथा के अनुसार सीताराम नाईक अपनी माता से अपने विवाह के लिये कहता हैं तब उसे ज्ञात होता हैं कि उसका विवाह बाल्यावस्था में ही मल्हार के बरमा नायक की पुत्री नगेसर के साथ हो चुका हैं अतः वह अपनी पत्नी को बिदा कर लाने के लिए बड़ी बारात लेकर मल्हार पहूंचता हैं, तथा बरमा नायक के बनाये हूए विशाल ''परमेसर त़रिया'' नामक सरोवर के किनारे पर ठहराता हैं दूसरे दिन नगेसर माता के मना करने पर भी तालाब नहाने के लिए जाती है। एक बिल्ली उसका रास्ता काटती हैं तथा तालाब में न जाने की सलाह उसकी माता देती है। परन्तु नगेसर उसकी उपेक्षा कर तालाब में जाती हैं जहां अनजाने में ही नायक से वाद विवाद हो जाता हैं नगेसर घर लौटकर भाइयों से विवाद का अतिरंजित वर्णन करके उन्हें दंड देने के लिए प्रेरित करती हैं परन्तु बरमा नायक के हस्तक्षेप से वे रूक जाते हैं तथा यह भी

ज्ञात होता कि सीताराम नाईक अन्य कोई नहीं उसका दामाद ही हैं। अतः उसका स्वागत किया जाता है बिदा कराकर लौटते समय सीताराम को उसका पालतू तोता स्मरण दिलाता हैं कि यह वही युवती हैं जिसने सरोवर पर उसे गांलियां देकर उपमानित किया था। अतः सीताराम नाईक नगेसर को पीटता हैं तथा अन्य यातनायें देता हैं घर पहुंचकर भी नगेसर कर अवहेलना ही करता हैं और एक दिन उसे छोड़ कर व्यापार के लिए चला जाता हैं। राह में जब वह नदी के किनारे ठहरता हैं तो भीषण वर्षा और नदी की बाढ़ के कारण उसका सारा सामान तथा सभी साथी बह जाते हैं। सीताराम तोते के द्वारा माता के पास अपनी आपत्ति का समाचार भेजता हैं जब नगेसर को यह बात ज्ञात होती हैं तो वह विलाप करती हुई नदी की ओर चलती हैं परन्तु उस बीच सीताराम को जल जन्तु खा जाते हैं। नदी के किनारे विलाप करती हुई नगेसर पर महादेव पार्वती जी को दया आ जाती हैं तथा वे सीताराम को जीवित कर देते हैं इस अवसर पर महादेव उन्हें उपदेश देते हैं कि वे लोग अब कभी तोता और बिल्ली न पाले तथा कभी नदी के किनारे न ठहरे। कहा जाता हैं कि बंजारा जाति के लोग आज भी उसका पालन करते हैं। यह वाक्या मुझे मेरी गुरू बहन गसंती मरकाम स्व. श्री गणेश मरकाम (देवार) कि बेटी है जो प्रसिद्ध करमा नृत्यकीय रही है। ने यह गाथा मुझे सुनायी थी।

n'ker vkMfuu xkFkk dk Hkkokfk&

धारा नगरी के चम्पक भाँठा में नौ लाख डेरे बने हूए हैं। दस लाख उड़िया व दस लाख ओड़निन ठहरे हुए हैं। उड़ियों के प्रमुख की कन्या दसमत सुन्दर एवं जवान हैं। उड़ीसा में भयंकर अकाल पड़ने के कारण अजीविका हेतु उड़िया जन यहां आये हैं राजा को सब उड़िया जन सलाम बजाने आए हैं तथा नजराना स्वरूप पांच रूपियों भेंट करते है।

राजा ने सभी उड़िया जनों दसमत के प्रेम के प्रमाण के रूप में मजदूरों सदृष्य कार्य करने को कहते हैं। वे राजा को टूटी हुई टोकरी मिट्टी उठाने को देते हैं। मिट्टी राजा के सम्पूर्ण अंगो व वस्त्रों पर बिखरती जाती हैं। उड़िया जन राजा को सूअर और गंधे चराने को कहते हैं। राजा को मांस–मदिरा का सेवन करने को कहते हैं। राजा को अनेक भांति अपमानित करते हैं। राजा के बालों को गधी की पूंछ से बांधकर गधी को दो कोड़े मारकर भगाते हैं। राजा को गधी घसीटते हुए भागने लगती है।

नौ लाख उड़िया जन उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र चले जाते है। राजा दसमत के विरह में अपना संतुलन खो बैठते हैं। राजा की पत्नी उन्हें उनके व्यवहार के लिये दुखित होकर समझाती हैं, कि दसमत मोहनी (जादूगरनी) है।

राजा फिर भी दसमत की तलाश जारी रखते हैं। और पीछा करते हूए ओडार बांध जाते है। उड़ियों ने राजा को अनेक भांति समझाया किन्तु राजा ने कुछ भी नहीं माना दसमत ने राजा

की आसक्ति को देखकर अपने को अग्नि में झोंक कर अपने को स्वाहा कर दिया। इस तरह ओड़निन सती हो गई।

बीरम गीत –

अंगना लिपाय चक चंदन मोर
भाई रे मोतियन चउक पुराय
धारा नगर के बम्हना बोलाइ के
सुभ देख के लगन धराय।
मइके के खोल बड, सहना मोर ददा
रेंगले हों बइहां झकोर
ससुरे के खोल बड़ सांकुर मोर ददा
रेंगलइहो बइहों सकेल।
अगना मां कुवां खनाय लेते मोर
दाई घियरी ला देते ढकेल
ऊपर पथना पिटाई देते मोर दाई
ओर गंगा कर लेते असनान।
कोड़ि–कोड़ि बोई लेते अरंडी ला मोर दाई
जोति–जोति बोइते कपास
खाई लेते अरडी के गोफीला मोर दाई
कोखिया ला करि लेते बांझ।
दाखम कोईया अऊ घट पीपर।
सुतुंग खजूर कइ पेड़ हो

यहि तीन पिसि पियें दुलहिन दे के
मइया बिटिया झनि होय हो।
बिटिया के जनम तो झांझर कोखिया
नित दिन बाढ़ता सगोड़ हो
बेटवा के जनमत निरमल कोखिया
नितदिन बाढ़े परवार हो
उड़त चिरई ला तै झन टिपिवेगा
पीठ के बहिनी समान
अपन पर बेटा अऊ पर घर बिटिया गा,
जोड़ी लिखिन भगवान हों।

chje xhr dk fgUnh e Hkkokfk &

आंगन लीप कर चक चंदन चौक पुराया। धरा नगर के ग्राम्हण को बुलाकर शुभ लग्न देखाया हैं पिता मां का आश्रय बुहत ही सुहाना हैं और ससुर का आश्रय बहुत ही संकरा हैं। मां के आरम में खुलकर बांहे फैलाकर चलती हैं किन्तु स्वसुर के यहां मुढे बांहे समेट कर (संकोच के साथ) चलना पड़ेगा। आंगन में कुंवा खुदवालेती मां औश्र घिर्री से मुझे कुंए में ढकेल देती। ऊपर से पत्थर रख देती तथा रो रोकर आसमान गंगा में परिवर्तित कर देती।

अपनी मां को उलाहना देते हूए कहती हैं कि अंडी के गोजी को खाकर अपनी कोख को तुमने बांझ क्यों नहीं कर लिया।

मुझे तन्म क्या दिया ? दाख और घट पीपर तथा सुलंग खजूर के पेड़ को परस कर पी लेती मां ताकि में (बेटी) जन्म नहीं लेती। बेटी का जन्म लटकी हुई कोख सदृष्य हैं, जबकि बेटे का जन्म निर्मल शिख हैं जिससे परिवार सदैव बढ़ता हैं।

उड़ती चिड़िया को तुम नहीं मारना, वह छोटी बहन के समान हैं। अपने घर में बेटा हुआ और दूसरे घ में बेटी भगवान ने इसी तरह जोड़ी बनाई हैं।

यह गाथा मुझे अतिप्रेरणा दाई एवं प्रभाव तक लगी क्योंकि मैं एक स्त्री (महिला) होने के नाते इस गाथा को अपने से जोड़ती हूॅ। आज समाज में जिस तरह महिलाओं पर आये दिन बलातकार, अत्याचार हो रही है, यह निंदनीय है।

uxlj dbuk &

मैं सीताराम, शिव नायक का बेटा और ब्राह्मण का दामाद रतनपुर जा रहा हूॅ। मल्हार मेरी ससुराल हैं। एक दिन दो दिन तीन दिन के बाद चौथे दिन वह श्वसुर के तालाब पर पहुंचकर तम्बू तानने और कंवल फूल के बगीचे में बैल रिंगाने के बाद सोचता हैं, तालाब के पार ये अपनी प्रेमिका को आवाज देता हैं। शहर के बीच से बैल हंकालते हूए, जिन गैलों के सूपे जैसे कान हैं, मल्हार नगरी में अपने भाई का गौना करवाने नगेसर साथ में आई है। नगेसर अपने भाई से बहुत स्नेह करती हैं तथा भाई की पत्नी की बिदा नहीं होने के कारण वह साथ में आयी हैं।

मां मेरी इच्छा बांध में स्नान करने की हो रही हैं। मां मना करती हैं कि नगेसर आजकल में ही तुम्हारा लग्न लगने वाला हैं यदि तुम्हें कुछ हो गया तो जी का जंजाल हो जायेगा। माता–पिता का वह कहना नहीं मानती हैं और भाभी की सलाह को अनसुना कर देती हैं। उसे एक ही जिद हैं बांध में स्नान करने की। घर में ही कुंआ और बावड़ी हैं घर में ही स्नान करों, तुम्हारें पीछे हम दस नौकर–चाकर लगा देंगे। यहीं तुम्हारे सहेलियां आ जायेंगी। घर से निकलते ही बिल्ली आड़ काट देती हैं जो और खुजली वाला कुत्ता सामने से निकलता हैं जो दोनो ही अपशकुन के द्योतक है। नगेसर आशंकित मन से बांध की ओर बढ़ती हैं कि न जाने आज किससे भेंट होगीं ? वह मन में इष्ट–देवता का स्मरण करते हूए कि वापसी में तुम्हें पूजा के फूल चढाऊंगी ऐसा कह आगे बढ़ती हैं।

नगेसर ने न माता–पिता की बात मानी न भाई–बहन की न ही उसने झूठन चाटने वाले एवं मेले में बैठने वाले कुत्ते की परवाह की। उसे सिर्फ एक ही धुन सवार हैं बांध में स्नान करने की। बांध चढ़ते हूए सियार ने आड़ काट दी। तब वह कहती हैं कि अभी घर लौट चलते हैं और उसके पश्चात् उस स्थान पर जाकर स्नान करेंगे जहां– घड़ा डूबा हूआ हैं। जहां चकमक पत्थर रखा हैं वहीं जाकर दतौन करेंगे।

हे काका। सीताराम कहता हैं कि– मेरी चिड़िया का शिकार करने की इच्छा हुयी हैं यीताराम गुलेल एक बार चलाता हैं

दूसरी बार फिर तीसरी बार मे चिड़िया उड़कर नगेसर के पास पर जाकर बैठ जाती हैं। सीताराम कहता हैं कि बहिन हट जाओ। बहिन का ब्राह्मन, क्या सुनारिन की जाति। तर्जनी अंगुली में जिसके गुदना गुदा हुआ हैं और जिसके पैर में तोड़ा (एक आभूषण) बिराजे हैं। उस सुन्दरी की मीठी गोली सुनने की साघ हैं। नगेसर कहती हैं– तुम मेरी ही जाति पूछ रहे हो, अपनी तो बताओं कि तुम ब्राह्मण हो या राजपूत या कि सुनार। तुम्हारी पतली–पतली मूंछ की रेख फूट रहीं हैं और तुम्हारें गले में रेशम का दुपट्टा शोभायमान हैं। तुम देखने में तो सुन्दर हो लेकिन तुम्होरी बात जहर लग रही हैं।

नगेसर अपनी सहेलियों से कहती हैं– चलो, चलो, अपने–अपने घर चलों। सीताराम कहता हैं तुम्हारी बात सुनकर

तुम्हारे घड़े के पानी के समान मेरा मन ठंडा पड़ रहा हैं। मैंने कुछ नहीं मांगा सिवाय पाती के। हरें मूंग की दाल पकाते और बांसमती का भात। संपूर्ण भेली गुड़ तुमको खिलाता। तुम्हें तेल लगने के लिए एक नाई की व्यवस्था करता और कपड़े धोने हेतु धोबी घर के चक्कर लगाने वाला बन गया हूॅ। तुम यदि मेरे जैसे के पल्ले पड़ती तो तुमसे मैं दिन–दिन भर पशु चरवाता।

नगेसर कुढ़ते हूए कहती हैं– चल भड़वे .....। अपनी सहेलियों से कहती हैं चलों–चलों घर चलो कहां का झूठा सोहदा आ गया हैं। घर पहुंचकर आंगन में सोने के कलश को पट्का, चांदी की गुड़री को छाती पर पटका और सात भाइयों की

बहिन नगेसर रो–रो कर कहने लगी कि– कहीं का झूठा और फरेगी बांध पर हमें मिल गया था। इतना सुनकर सातों भाई अपने पिता से कहते हूए कि भूम–प्रेत से मुक्ति के लिये लड्डू बांटने जा रहे हैं, बांध पर पहूंचे। बांध पर पहूंचकर हाथ में गुलेल लिये हुए – सीतारात को देखकर सातों भाई हाथ जोड़कर उसका अभिवादन करते हैं। वे कहते हैं– हे जीजा जी। सालों के नाते– हमारें ऊपर दया–माया बनायें रखिये और इतनी मर्यादा बनाये रखिये कि हमारे घर चलें। अतना कहकर सीताराम को पकड़कर घर ले जाते हैं।

सीताराम ससुराल पहुंचते हैं तथा नगेसर के माता–पिता तथा सातों भाई मिलकर शुभ महूर्त में नगेसर कन्या को डोली में बिठाकर सीताराम के साथ रतनपुर के लिये बिदा करते हैं। बिदा करते हुए माता–पिता की संपूर्ण इन्द्रियां दुखः से जल रही हैं और भाभी का मन सुख से बर्फ की तरह ठंडा हो रहा हैं। सातों भाईयों की एक मात्र बहिन के ससुराल जाने पर उसका गर्व टूट रहा है।

nokj tu le|nk; }kjk djek ykdxhr] ykduR;

लोक वाद्यों का प्रचलन वैदिक काल से चला आ रहा हैं अर्थात हमारे प्राचीन ग्रन्थो में इसका प्रयोग मिलता हैं क्योंकि बिना ताल के संगीत निष्प्राण हैं इसके संबंध में विद्वानों के अनेक मत हैं– सर्वप्रथम मानव के मस्तिष्क में धनुष की डेर की टंकार से बने हूए सूत्र की कल्पना जागृत हुई होगी। इसके फलस्वरूप ततु वाद्य बजाने की उत्कंठा मनुष्य को हुई उसने एक तंत्री, त्रितंत्री,

सप्ततंत्री, किन्नरी आदि वीणाओं की उत्पत्ति की, वीणा, भारत के प्राचीनतम वाद्यों में से हैं ऐसा माना जाता हैं कि देवी देवताओं में से भी उसका संबंध में रहा हैं। मां सरस्वती तो वीणा को हमेशा अपने पास रखती हैं इसलियें उसे वीणा वादिनी कहां गया है।

ऋग्वेद ने मृदंग वीणा वैदिक काल में नादी कहते थे, डमरू आदि वाद्य का वर्णन भी मिलता हैं और इन पर वेद यंत्रो को गाया जाता था तभी तो कहा गया हैं।

''गीत वाद्य नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यतें''

गीत वाद्य और नृत्य से ही संगीत की उत्पत्ति होत है।

पौराणिक गाथाओं में हम वाद्यों को किसी न किसी रूप में पाते है। शिवाजी डमरू बजाते थे जो आज तक लोक वाद्य रूप में प्रयोग हो रहा हैं। विष्णु के हाथ में शंख, जिसे विष्णु बजाकर नांद उत्पन्न किया था। कृष्ण के हाथ में बंशी होना लोक वाद्यों का घोतक है। शिवाजी के नृत्य के समय मृदंग बजा करता था।

एक किवन्दती के अनुसार ढोल वाद्य की रचना ब्रम्हा जी ने की थी। हाथों से बजाई गई ताली सर्वप्रथम ताल वाद्यों की उत्पत्ति मानी गई है। जो अभी भी आदिवासियों के नृत्यों में

1- djek xhr

स्थाई – इसा गोली ओ ऽऽ हाथ दिवाना

इसा गोली ना ऽऽ 2

कभ् नई तो दियो राजा मीठा बोली ओ ऽऽ

अन्तरा – गड़ गिड़ गड़ गिड़ गाड़ी आये

ओमा लगई ताला ओ राजा ओमा लागई ताला

संगी मोर जहूरिया ल ले गई मोटर वाला रे

गोली भरी डालेव ना ऽऽऽ – 2

भरके दू नाली रे गोली मारी डाले बो ऽऽऽ – 2

छत्तीसगढ़ में प्रमुख रूप से करमा गीत को करमा ताल में ही गाया जाता हैं इसे करमा ताल ही कहा जाये तो उचित होगा।

देवार करमा ताल – 16 मात्रा

सम्पूर्ण गीत को इसी धुन में गाया जाता है।

स्थाई –

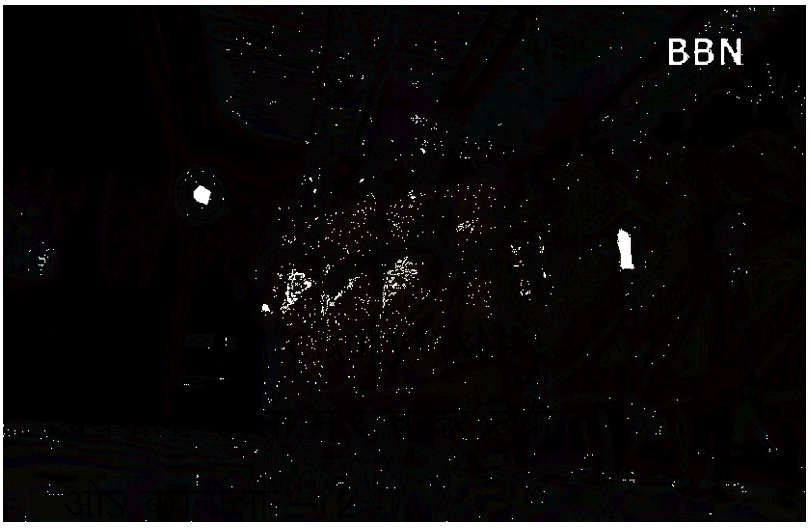

अन्तरा – बेरा बेरा मोरा डांग भरा हाथ–हाथ

डांग भरा बेरा नकर लकर आये ओऽ

मोर अलबेला बघनीला

बघनीला छीला मोर चन्दर छबीला

बघनीला।

djek xhr

स्थाई – बधवा रेंगाले धीरे धीरे
डोंगरी के तीरे, बधवा
रेंगाले धीरे धीरे ऽऽऽ

अन्तरा – कर गोरी भाजी रान्धे, पड़री मोर भाटा ओ
सव रेंगी धीवा ला कड़काये,
बोघेला धीरा
बधवा रेगाले धीरे धीरे

djek

स्थाई – बंगला के खायो, बीरों पाऽन
गोरी बीलम गयो
बंगला में नाऽऽ –2

अन्तरा – लाली बंगला में रे पड़री
बंगला में ना हरियर बंगला
में बंगला के खायो बीरो पान
गोरी बीलम गयो बंगला में नाऽऽ – 2

djek

स्थाई – काबर दांवा ढीले ऐला लेजा हरियर
बगीचा में दांवा ढीले – 2

अन्तरा – तोर मोर दोस्ती गजब
दिन कई ओऽऽऽ
ये गजब दिन कई ऐला लेजा साड़ी
मगाये जबलपुर के।
ये जबलपुर के ऐला लेजा साड़ी
मगाये जबलपुर के – 2

djek

स्थाई – करमा सुनला चले आगे गा

करमा में तहूँ लामिला लेबो – 2

अन्तरा – नई दिखे रख राई

नई दिखे गाव गोड़ा

खोज ते खोजल चले

आबेगा ऽऽ– 2

djek

स्थाई – दे तो डंगनी जा दीदी

दे तो डंगनी लाऽऽऽ – 2

दे तो डंगनी ला थोड़िक (चिटीक) टोर आतेव

सुनगा ला दे तो डंगनी ला– 2

अन्तरा – आरी रूंधेव बारी रूंधेव

तिर तिर मा खोबा – 2

कारी टूरी के माँग संवारे तीन

दिन सोभा – 2

दे तो डंगनी ला – 2

दे तो डंगनी ला दीदी

दे तो डंगनी ला ऽऽऽ– 2

djek

स्थाई – नग जोगी लई लेबे हरजानां पुलिस बैइठे थाना

नग जोगी लई लेबे हाँ,

नग जोग लई लेबे हाँ,

नग जोगी लई लेबे हरजानां,

नग जोगी लई लेबे हरजानां पुलिस बैइठे थाना।

अन्तरा – रानी के रनवासा गा जरगे राजा के पतऊहा – 2

मुनसी मारे सुरी के गा –

मुनसी मोर सुरी के रखवारा पुलिस बैइठे थाना

नग जोगी लई लेब हाँ,

नग जोगी लई लेब हाँ,

नग जोगी लई लेब हरयानां

पुलिस बैइठे थाना।

djek

स्थाई – एक गोड खोरी हवें,

ऑखी तोर कानी रे

तब ले लाहोच लेथे

जरे तोर जवानी रे

देखो संगी में

दुनिया के बड़ाई ला

डेकी डौका अऊ

कनवा के लड़ाई ला

djek >qej e.Myk

vks gks gks gks ----------

gk; js la>k ds ykus ;kj

p<+ds lseh Vksj ys la>k ds ykus js

la>k ds ykus js----------

gk; js la>k ds ykus----------

p<+ds lseh Vksj ys--------- AA2AA

varjk &

1- Nhap dksM+ ds eNjh ykuso

[ksnk ds f'kdkj laxh [ksnk ds f'kdkj

rksj eksj ;k eu fey tkgh

dk djgh ljdkj js la>k ds ykuso---

p<+ds lseh Vksj ys la>k--------

2- iku [kk; ialkjh ds ybdk] fcM+h fi;s

fetkth laxh] fcM+h fi;s fetkth]

[ksydwn ds etk mMkys] nks fnu ds

ftuxkuh js >a>k ds ykuso----------

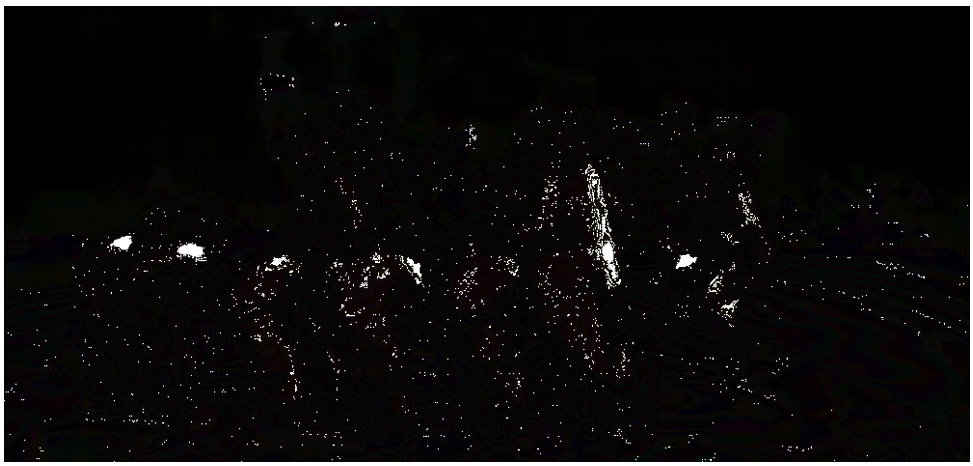

djek ¼ygdh½

ckjh ds rqekukj csyk] csyk js

csyk pys vkcs jke]

tc rd gs ftuxh ;s esjk js---------- 2

ckjh ds rqekukj----------

1- dfj;k rksj /kksrh] fdukjh ubZ vk;sxk gks----------

gk; js------------------ 2

ijns'kh tks gksxs fpUgkjh ubZ vk;sxk

csy js csyk pys] vkcs jke

tc rd gs ftauxh----------

2- >huh fcNkSjh myV f[kyukxk gks--------

gk; js----------

dc; gksgh fpjab;k rksj feyuk xk

csyk js csy pys vkcs jke

tc rd gs ftauxh----------

djek yaxM+k

cgkuh <wdsyk gs vkM+bZ vkM+

xb; ds ykus c?kuh <wds gs js

1- dksu lkaoj /kjs rqik ds cUnqfd;k----------2

dksu lkaoj /kjs gs fclkj

xS;k ds ykus c?kuh <wds gs js

2- cM+s lkaoj /kjs rqik ds cUnqfd;k----------2

NksVs lkaoj /kjs gs fclkj

XkS;k ds ykus c?kuh <wds gs js---------

djek ¼ltuh½

eqjyk yk js ?kj lktu vk;s

ukpks ia[k ilkj

1- ?kqeM+ ?kqeM+ ds cnjk Nk;s---------- 2

'khry pys c;kj---------

eqjyk js ?kj lktu vk;s----------

2- nwj ns'k ds ge ijns'kh

dj yks js lRdkj

eqj yk js ?kj lktu vk;s--------

3- dk pkgh tsoukj rqEgkjksa------ 2

dk pkgh lRdkj

eqj yk js ?kj lktu vk;s------

4- :i rqEgkjksa Hkkstu pkfg,------- 2

uSuu dks lRdkj

eqg yk js ?kj

ukpks ia[k ilkj

c?ksyh djek

eanwjh vf/kuh cksy;] eanwjh vf/kuh cksy; js

enwjh ys [kjou mpfVx;

eanwjh vf/kuh cksy; js

1- ;k dgka ys vkos rksj ekVh ds eanwfj;k gks-

----

eanwjh vf/kuh----------

;k dgka ys vkos csu cktk x eanwjh vf/kuh

2- ;k [kkYgs ys vkos rksj ekaVh ds eanwfj;k gks···-------- eanwjh vf/kuh

;k e.Myk ys vkos csu cktk x

eanwjh vf/kuh----------

ygdh &

nknj dk eryc igkM+ ds mij Hkkx] fHkBh dk eryc gSa fnoky

nknj ds emgk tjx; irsjk] rksj

emgkyk rksj eMgk yk fcu; tksM+hnkj xk

rksj emgk ykjs----------

1- iFkjk ds fHkBh Åij gs lktu---------- 2

fctyh nqokjk fNpokcks ikuh

rksj emgk y----------

2- nq:x gs ftyk] HksybZ Fkkuk---------- 2

fxj xbls ikuh] vktkgh nkuk

rksj emgk yk----------

djeftfr;k djek

NÙkhlx<+ ds jk;x<+ ftys esa fuokl djus okyh vkfne tkfr ^^mjkWo** djek ftfr;k dks vius fof'k"V yksd u`R;ksa esa ls ,d ekurh gSA ;g yksd u`R; dqvkWj ds eghus esa dje iwtk ds volj ij fo'ks"k :i ls ukpk trk gSA djek iwtk okf"kZd mRlo ds :I esa vk;ksftr dh tkrh gSA blesa xzke ds uj&ukjh] cky o`) vkfn lHkh vR;Ur mRlkg ls lfEefyr rks gksrh gS] fdUrq blds fy, dksbZ frfFk fu/kkZfjr ugha gSA xzkeh.k tu viuh lqfo/kkuqlkj ekg dh fdlh Hkh frfFk dks ioZ eukrs gSA ;g mRlo jk;x<+ ftys esa xkWo&xkWo esa lkewfgd :Ik ls vk;ksftr gksrk gSA fdlh O;fDr fo'ks"k dh eukSrh vkfn iwjh gks tkus ij ml O;fDr dk ifjokj viuh fo'ks"k [kq'kh ds lkFk mRlo esa lfEefyr gksrk gSA ifjokj dk eqf[k;k fo'ks"k p<+kSrh dh lkexzh izLrqr djrk gSA

Hkkjrh; yksd laLd`fr esa ¼ekU;rkvksa ds vuqlkj½ Hkkjr ,oa NÙkhlx<+ ds fofHkUu Hkkxksa esa ftl izdkj lkou ds eghus esa ^^Jko.kh** ;k ^^loukgh** dk egRo gS vkSj bl volj ij cfgu&csfV;kW llqjky ls ek;ds ykbZ tkrh

gSa] mlh ijEijk dh rjg jk;x<+ dh mjkWo tu&tkfr dh laLd`fr esa ^^dje iwtk** dk egRo gSA jk;x<+ ftys esa dje ,d o`{k gksrk gSA ftl rjg xksaM+ tu&tkfr lktk o`{k esa cM+k nso ¼'kadj Hkxoku½ dk fuokl ekurh gS] mlh izdkj mjkWo tu&tkfr dje o`{k esa cM+k nso dk fuokl ekurh gSA dje iwtk blh ewy Hkkouk dh |ksrd gSA jk;x<+ ds oukapyksa esa fLFkfr xkWoksa esa ;g mRlo jkr&jkr Hkj pyrk gSA bl volj ij dqvkajh yM+fd;kW ozr j[krh gS] idoku cukrh gSA dje iwtk LFky ij dje o`{k dh Vguh xkM+h tkrh gSa mjkWo tkrh; iqtkjh mldh iwtk lEiUu djrk gS] dje nsork dh dFkk lqukrk gSA dFkk ij Fkki iM+rs gh ,d lkFk ipklksa urZd dje ftfr;k esa >we mBrs gSaA ipkl daBksa ls fudy gqvk Loj ,d gh daB ls fudyk gqvk lqukbZ iM+r gSA bl rjg u`R; izkjaHk gks tkrk gS vkSj jkr Hkj Hkksj dh ikS QVus rd vck/k Øe esa tkjh jgrk gSA urZd tc Fkd dj pwj gks tkrs gSa rc fojke ds fy, cSB tkrs gSa vkSj mudk LFkku vU; urZd ys ysrs gSa] fdUrq u`R; ugha FkerkA izkr% dky dje dh Vguh dks ,d tqywl ds :Ik essa fdlh tyk'k; ds rV ij ys tk;k tkrk gS vkSj

mjkao laLd`fr ds fof/k&fo/kku ds vuq:Ik mls folftZr fd;k tkkrk gSA rRi'pkr ozr j[kus okyh yM+fd;kW tyk'k; esa Luku djus ds mijkUr viuk ozr rksM+rh gSA ozr j[kus ds ihNs yM+fd;ksa dh ewy Hkkouk vPNs ifr dh izkfIr ds fy, gksrh gSA bl u`R; esa L=h&iq:"k nksuksa leku :Ik ls Hkkx ysrs gSaA

ekM+h djek

cLrj ftys dh nUrsokM+k rglhy esa fuokl djus okyh n.Mkeh ekfM+;k tu&tkfr dk lg u`R; gS ^^ekM+h djek**A tc fdlh mRlo ;k lkekftd 'kqHk dk;Z ds le; izeq[k yksd u`R;ksa dk vk;stu gksrk gS rks ekM+h djek [ksy&[ksy esa izeq[k u`R; ds foJke ds {k.kksa esa fd;k tkrk gSA blesa dsoy efgyk,W Hkkx ysrh gSA tSls gh izeq[k yksd u`R; izkjEHk gksrk gS] ekM+h djek rqjUr lekIr gks tkrk gSA ekM+h djek xhr ds lkFk pyrk gSA blesa ok| ugha ctk;k tkrk gSA n.Mkeh ekfM+;k dh Hkk"kk esa xhr dks ikVk dgrs gSA ekfM+ djek esa ^^ekfM+ ikVk** xk;k tkrk gSA n.Mkeh ekfM+;k dk lkekftd ,oa lkaLd`frd thou ioZ ,oa mRloksa ls ljkcksj gSA ;s o"kZ Hkj

mRlo eukrs gSaA ckjg eghusa esa 'kk;n gh dksbZ ,slk eghuk gksxk] ftlesa budk dksbZ ioZ ;k mRlo u euk;k tkrk gksA bu ioksaZ vkSj mRloksa ds vk/kkj gSa buds yksd u`R;A ekM+h djek Hkh buesa ls ,d gSA

ekM+h djek dh dksbZ fo'ks"k cukoV ;k jpuk ugha gksrh gSA efgyk,W iafDrc) [kM+h gksrh gS rFkk xhr ds mrkj&p>+ko ds vuqlkj vkxs c<+rh gSa vkSj ihNs gVrh gSaA bl u`R; dh dksbZ vyx ls os'kHkw"kk ;k lkt&lTtk ugha gksrh gSa] cfYd ^^xoj u`R;** dk ifj/kku gksrk gSA

[kygh djek

'kgMksy] fcykliqj vkSj eaMyk ftys dh lhek,W vejdaVd] isUMªk&xkSjsyk vkfn ds vklikl feyrh gSA bl laxe ds Hkw&Hkkx ds ,d VqdM+s dks [kygh] [kykSaVh ;k [kkYgk ds uke ls tkuk tkrk gSA O;ogkfjd cksyh esa [kkYgsa dk vFkZ gksrk gS] uhps ;k uhps okyk HkkxA bl Hkkx dh HkkSxksfyd fLFkfr Hkh dqN blh rjg dh gSA bl {ks= esa izfyr djek] nnfj;k] lqok] lSyk vkfn xhr

u`R;ksa dh pyu esa u`R;ksa ds lkFk xk, tkus okys yksd xhrksa dh rtksZ esa 'kgMksy] fcykliqj ,oa eaMyk ftys esa izpfyr ,sls gh yksd xhrksa dh rqyuk esa dekscs'k vUrj gSA [kygh djek buesa ls ,d gSA b;s djek [kyrh] djek [kyM+h vkSj djek [kkYgk ds ukeksa ls Hkh tkuk tkrk gSA

bl u`R; 'kSyh esa efgyk,A vkxs c<+rs gq, iq:"k urZdksa ds pkjksa vkSj nzqr xfr ls pDdj ekjrh gSA vkeus&lkeus [kM+s gksj vkxs&ihNs vkrs&tkrs gSaA fQj nksuks iafDr esa ,d nwljs ds ikl gksdj rsth ls xksy ?ksjs esa ukprs gSaA ,d dne vkxs dh vksj rFk ,d dne ihNs dh vksj c<+dj ck,W iSj dks Åij Nkrh rd mBkrs gSaA vyV&iyV dj ukpuk Hkh bl djekdh viuh fo'ks"krk gSA ;g u`R;] xhr iz/kku gksrk gSA blesa L=h iq:"k nksuksa Hkkx ysrs gSa rFkk nksuksa ,d&,d djds u`R; ds lkFk xhr xkrs gSA tc rd th pkgrk gS u`R; gksrk gS] jkr&jkr Hkj u`R; pyrk gSA

dksjck djek

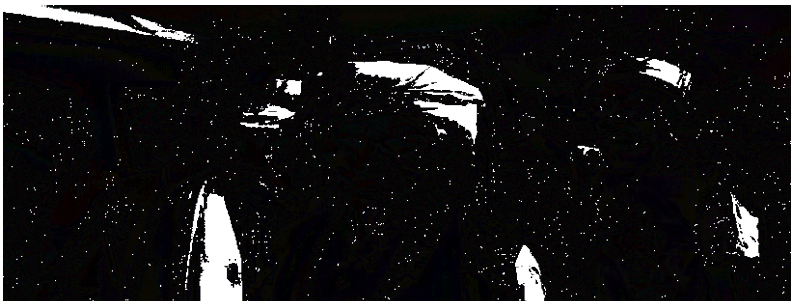

ljxqtk ftys dh dksjck tu&tkfr taxy esa jguk ilan djrh gSA dksjck tkfr Hkh djek u`R; djrh gSA budk djek vU; tutkfr;ksa ds djek u`R; izdkjksa ls fHkUu gksrk gSA u`R; ds fy, dksbZ fof'k"V volj dh vko'drk ugha gSA eu esa meax mBh] lkFkh vkSj u`R; vk;ksftr gs tkrk gSA

NÙkhlx<+ ds fofHkUu yksdkapyksa] oukapyksa esa izpfyr djek u`R;ksa dh fHkUu 'kSfy;ksa ds v/;;u ds mijkUr eaMyk ftys esa izpfyr vU; izdkjksa ij n`f"Vikr djuk vko';d gSA oSls rks djek u`R; ewyr% xksaM+ tu tkfr dk viuk tkrh; u`R; gS fQj Hkh djek esa 'kkfey gksus ds fy, dksbZ izfrca/k ugha gSA eMyk ftys ds tu&tkrh; xkWoks esa ,slh izFkk gS fd tc fdlh ifjokj esa dksbZ uo;qorh esgeku ds :Ik esa vkrh gS rks mls xkWo ds ;qodksa ds lkFk djek

u`R; djuk iM+rk gSA bl laca/k esa xkWo ds uo;qod tkudkjh ysrs jgrs gSaA tSls gh mUgsa irk pyrk gS fd veqd ?kj esa dksbZ esgeku ;qorh dk vkxeu gqvk gS] oSls gh xkWo dk uo;qod ny ,d ukfj;y vkSj fpajksathnkuk ysdj ml ?kj ds eqf[k;k ds ikl ;qorh ds lkFk u`R; djus dh vuqefr ysus igqWp tkrk gSA ;g dsoy ,d vkSipkfjdrk gksrh gS] D;ksafd u rks eqf[k;k ;qorh dks jksd ldrk gS vkSj u gh ;qorh bl izdkj u`R; djus ls badkj gh dj ldrh gSA cl ukfj;y iznku djus ds lkFk gh ekWnj ij vkaxu lt tkrk gS vkSj djek u`R; dk lekW ca/k tkrk gSA jkr Hkj djek gksrk gSA ekanj vkSj fVedh ds eknd Loj xwatrs gSa rks lksus okyksa dh uhn VwV tkrh gSa vkSj os Hkh f[kapdj pys vkrs gSA

blh rkjrE; eas ,d jkspd izlax dk mYys[k djuk lehphu gksxkA

^^,d uoo/kw C;kg dj llqjky vkbZA Ms<+&nks o"kZ rks mlus ?kj ds ifjos'k esa vius u;s iu esa xqtkjsA ,d iq= dh ekW Hkh cu xbZA ,d fnu ekWnj dh Fkki lqudj og viuk /kS;Z [kks cSBhA ladksp lgstk u tk ldkA mlus viuh lkl ekW

ls dgk& ekW [kkYgsa Vksyk ekWnj ct jgk gS] esjk eu fgydksjs ys jgk gS] ekWnj ds ikl igq¡pus ds fy, cspSu gks jgk gSA ekW rqe eqUuk dks tjk lEgkyks] eSa djek ukpus tkrh gwWA ekWnj vkSj fVedh eq>s cqyk jgs gSaA lkl us dgk fd [kkYgsa Vksyk nwj gS] jkr va/ksjh gS] jkLrk ÅcM+&[kkcM+ gS] rqe vdsyh vkSj toku gks] bl ?kj dh cgw gks] bl ?kj dh bTtr dk Hkkj rqe ij gS] u tkus jkLrs esa vfiz; ?kVuk gks tk,A cgw us izR;qRrj esa dgh& ekW eSa D;k d:W] vki bl ekWnj dk ctuk can djk nks vU;Fkk vc eSa ,d {k.k ds fy, Hkh ;gkW u Bgj ldwWxh] eSa djek ukpwWxhA**

lEeksgu] vkd"kZ.k] ca/kueqDr] lPps gn; dh iqdkj] izseh tuksa dk feyu gh djek dk eeZ gSA

nar dFkk ¼1½

djek yksd xhr] u`R; ds dqN nar dFkk,a eSa vius cqtqxksZ ,oa yksd dykdkjksa ls ladfyr dh gS] tks fd eSus vknhoklh yksd dykdkj MkWDVj lqeju flag /kzosZ ls tqokuh lquh gS] tks bl izdkj gSA

iwjkus tekus esa djekpan uke dk ,d jktk Fkk mldk jkt nwj&nwj rd QSyk Fkk mlds jkT; esa ,s'o;Z dh deh ugha Fkh /ku laifRr dks ns[kdj mlds iMkSlh jktk mlls bZ";kZ j[krs Fks] mldk ;g oSHko muls ns[kk ugha x;k mUgksus ,d tqV gksdj jktk ij p<+kbZ dj nh mldh fo'kky lsuk ds lkeus jktk fVd ugha ldk og mlds lkFk mlds ifjokj ds yksx Hkh tkus yxs os lc jktk ds lkFk taxy esa ladV ds fnu dkVus yxs ,d jkr jktk ,d o`{k ds uhps cSBs gq, vius ulhc ij lksp fopkj dj jgk FkkA fd mlus taxy esa dqN nwjh ij dqN fn;s tyrs gq, ns[ks jktk dks cM+k vk'p;Z gqvk] og mBdj mudh vksj pyk tc og ikl igwapkrks ns[kk ,d flagklu ij dksbZ nsork cSBk gS vkSj dqokajs yM+ds yM+fd;ka flj ij dy'k j[ks gq,] mlds vkl ikl ukp jgs Fks tc jktk muds djhc x;k rks mls ns[kdj fL=;ka xk;c gks x;h dsoy nsork Hkj ogka jg x;k] ;g ns[kdj jktk dks vk'p;Z gqvk mlus nkSM+dj nsork ds ikao idM+ fy;k vkSj viuh foink dh dFkk nsork ds lkeus jks&jks dj lqukbZA bl ij nsork izHkkfor gks x;k vkSj mlus dgka dh ekax D;k ekaxrk gS jktk us gkFk

tksM+dj dgka fd esjs nq'eu vius jkT; esa ykSV tk;s vkSj esjk jkT; okil fey tk;A cl ;gh ojnku eq>s nhft,] nsork us dgk gka] rqe esjh iwtk djks rqEgkjk jkT; fey tk,xk vkSj rqEgkjs nq'eu vius jkT; dks okil ykSV tk;sxs] bruk dgdj nsork xk;c gks x;k] jktk lq[kh&lq[kh vius Msjs esa ykSV vk;k vius ifjokj dks tksM+k vkSj nsork dh dFkk lqukbZ vkSj taxy esa iwtk dh rS;kjh dh nsork ds dgs vuqlkj vius Msjks dh uhps dh txg dqaokjh yM+dh;k ls fyiok;k yM+dks us dne o`{k ds Mky yk dj vkaxu esa x<+k fn;kA yM+fd;ksa us ozr j[kk vkSj jkr esa deZnso dk iwtu fd;k jkr Hkj u`R; pyk] izkr% dky Mky dks tyk'k; esa folZtu fd;k mlds ckn jktk D;k ns[krk gS fd os gh yksx mls eukus vk;s gSA ftUgksus ml ij p<+kbZ dh FkhA vc jktk vius jkt/kkuh esa pyk x;k vkSj cM+h /kwe&/kke ls izfro"kZ dne o`{k mRlo deZiqtk ds uke ls jkT; esa QSy x;kA deZiwtk dk ;g u`R; dekZ ds uke ls izfl) gqvk] tks fd dqaokj ds efgus esa izfro"kZ vkfnoklh {ks=ksa esa euk;k tkrk gSA

nar dFkk ¼2½

djek yksd u`R; ij NÙkhlx<+ ds ljxqtk oukapy {ks= dh nar dFkk

djek xhr ds laca/k es avusd ckrsa izpfyr gSA izkphu dky esa tEew nhi jsok [kaM NÙkhlx<+ dh ineiqjh xkao esa egkunh ds fdukjs ineIsu uke dk ,d catkjk jgrk FkkA mldh ifRu dk uke in~feu FkkA ;s yksx cM+s datelh vkSj csbZekuh ls /ku lap; fd;k djrs FksA nuds lkr iq= FksA buds uke dfyaxgk] ?kq?kqjgk] yerwjh] cafn;kgk] QwUnjgk] >ka> eathjgk vkSj ljekgk FkkA buds vykok budh ,d iq=h lroarhu FkhA catkjk dh e`R;q ds ckn csbZekuh ls lafpr fd;k /ku u"V gksus yxkA D;ksafd buds lHkh iq= vyky vkSj dkepksj FksA mUgksuas vius firk dh yk'k dks tehu esa nQu dj fn;k ftlls tehu vif= gks x;h vkSj ml o"kZ o"kkZ ugha gqbZ ftlls vdky iM+ x;kA O;kikj djus ij mUgsa gkfu gqbZA ljekgk us 'ke'kku esa [ksrh dh vkSj dkenso ls ihfM+r Hkkotksa dks dkenso dks izlUu djus ds fy, xhr xk;kA blls mUgsa ykHk gqvk vkSj lc izlUu gks x;A vc os dne dh Mxky dks dkVdj tehu esa xkM+dj ml feydj iwtk fd;s vkSJ xhr

xkdj u`R; fd;sA nwljs fnu ml Mxky ds egkunh esa ljk fn;s ftlls djenso muls iqu% :"V gks x;A rc ljekgk mls ysus egkunh x;kA ogka ij djenso ls {kek ;kpuk djus ij djenso dk n'kZu gqvkA rc ls ljekgk dks djekgk dgk tkus yxkA mlh le; ls djek xhr xk;s tkus yxkA

Lrqfr fo"k;d djek xhr Hkh izLrqr gS %&

igyh iaokjksa xkSjh] Qsj xkcksa nsoh 'kkjnk

dkdj xkoksa] dkdj ctkvksa] lqjlrh ds djks ijuke

dgks cSBs tksxuh dgka cSBs nsoh 'kkjnk

dkgs ek xq: cukghA

ekanj cSBs eksj txeksgu tksxuh cM+h 'kkjnk

dkgs ek xq: cukghA

ljxqtk dk ;g izeq[k xhr gSA ogka ds tu thou esa djek xhr jph clh gSA ogka xk;h tkus okyh djek xhr dh ,d ckuxh is'k gS %&

py l[kh djek jek; eksj e;k ykxsA

dgka ds lqjlrh dgka ds tksfxu eksjA

v[kjk ds lqjlrh] [kjkZ ds tksfxu eksjA

djek R;kSgkj eukus ds iwoZ lc nsorkcksa dk vkOgku fd;k tkrk gSA dydÙkk dh dkyh ekbZ vkSj lacyiqj dh leykbZ nkbZ bl {ks= esa cgqr yksdfiz; gSA nsf[k;s ,d xhr %&

gjs lqefju djkSa js]

;gha vaxub;k ek lqeju djkSaA

,d lqeju esa pank lq:t]

,d lqfejks /kjrh vkdk;kAA gjs---

,d lqefju pkjksa nsork yk]

xkao ds xaofV;k Bkdqj] nsork jsAA gjs

dydÙkk ds dkyh ekbZ lacyiqj dh leykbZ

ykQk ds cq<+ok nso] Nwjh ds dkslxbZAA gjs----

ljxqtk ds lhrkiqj] t'kiqj] /kjet;x<+ ds vkfnoklh djek u`R; dks o"kZ esa dsoy pkj fnu mRlo ds:i esa eukdj ukprs xkrs gSA ,dkn'kh djek uok[kkbZ ds miy{; esa] Hkknksa esa iq= izkfIr vkSj mldh eaxy dkeuk ds fy,] mBkbZ djek u`R; Daokj esa] HkkbZ&cgu ds izse ls lacaf/kr nlkbZ djek u`R; fd;k tkrk gSA nhikoyh ds volj ij u`R; xhr izse jl esa Mqck gksrk gSA

इस प्रकार के आदिवासियों के ये गीत, पुरातन संस्कृति एवं सम्पदा के अमिट उपादान हैं, जिनमें अनेक संस्कृतियों की आत्माओं का एकीकरण हुआ है। पर वर्तमान में मौजूदा हालातों से मालूम हो रहा है कि आदिवासियों के जीवन और संस्कृति में बदलाव आ रहा है। आज आदिवासी अपनी पुरानी सभ्यता को भूलते जा रहे है। अनेक जन–जातियाँ तो अपनी मूल भाषा और बोलियों को ही भूल रही है। जन्म, विवाह और मरण की रीतियों में अंतर आने लगा है। नृत्य संगीत और अन्य कलाएँ भी धीरे–धीरे छूटती जा रही हैं तथा सदियों पुरानी परम्परा भी छूटने लगी हैं। इन सब बदलावों के कारण आदिवासियों की शांत–सरल जिन्दगी नष्ट होती जा रही है।

अतः हमें विकास के प्रयन्तों में आदिवासियों की बृद्धि, एकाग्रता, धैर्य, देशभक्ति, परिश्रम और राष्ट्रीय–चेतना का असरकार और कारगार उपयोग करने के लिए प्रयत्नशील होना पड़ेगा। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक सुनियोजित योजना शुरू करने की बेहद जरूरत है जिसमें आदिवासी संस्कृति, संगीत, नृत्य एवं कला की मौलिकता, संरक्षण, पहचान एवं रख–रखाव बिना किसी हस्तक्षेप के किया जा सके।

v/;k; &3

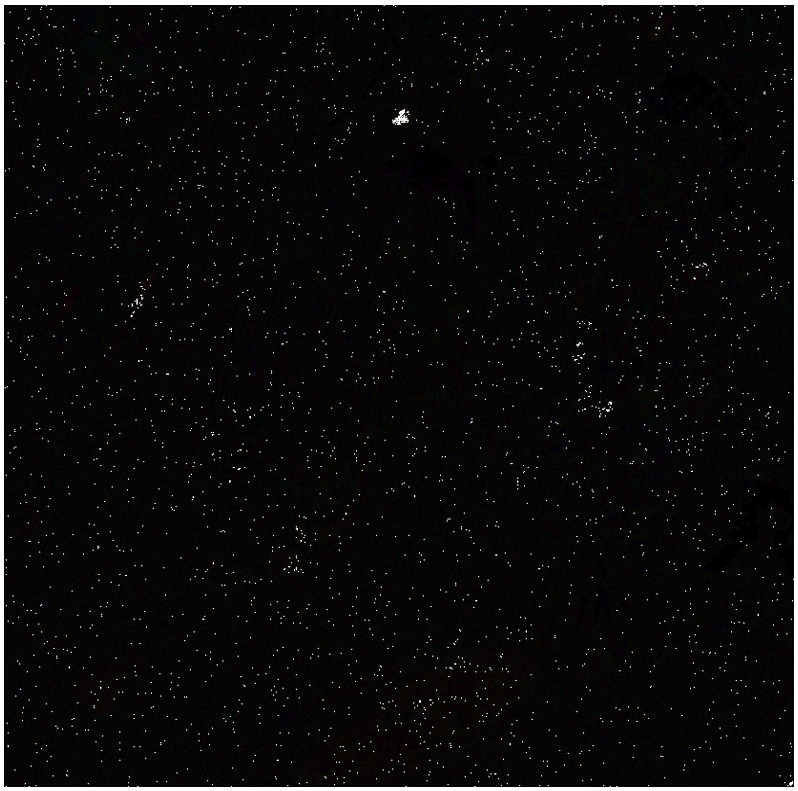

^^djek ykd uR; d lxhr i{k] ykd okn;k dk i;kx ,o o'k&Hk"kk] lkt&Jxkj dk jpukRed v/;;u**

यह नृत्य छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति का पर्याय है, छतीगढ़ के आदिवासी और गैर आदिवासी सभी का यह लोक मांगलिक नृत्य है, करमा नृत्य सतपुड़ा और विंध्य की पर्वत श्रेणियों के बीच सूदूर ग्रामों में भी प्रचलित है। शहडोल, मंडला के गोंड और बैगा तथा बालाघाट और सिवनी के कोरकू परधान जातियों करमा के ही रूपों को नाचती है, बैगा करमा, गोंड करमा, भुइयाँ करमा आदि जातीय नृत्य कहां जा सकता है, छतीसगढ़ के एक लोक नृत्य में 'करम सेनी' देवी का अवतार गोड़ के घर में माना गया है, दूसरे गीत में धसिया के घर माना गया है।

lxhr i{k ¼dk0; i{k½

परमेश्वर की माया धन्य है। देखो इस संसार में उसकी कैसी लीला छाई है। कहीं लूले बसते है, कहीं लंगड़े और कहीं गोरे रहते है। एक ओर दुख है तो दूसरे कहीं मांदर बज रहा है, तों कहीं टिमकी बज रही है, तो कहीं, करमा नृत्य हो रहा है। इस संसार के बाजार में रत्न बिकते है परन्तु जो विद्वान है के सौदा कर लेते है और मूर्ख पछताते रह जाते है। करमा में एक चिन्ता है सुनिये करमा झूमर गीत–

धन धन परभू जी की माया हो,
देखो संसारे ला कैसा लीला धाय रे ऽ ऽ ऽ।
कौन टोला बसे तोरे लंगड़ा और लूला हो ऽ ऽ ऽ राम रे
कौन टोला बसे मुहै में वोरा हो। देखो सनसार ला कैसा।।
खल्है टोला बसे तोरे लंगड़ा और लूला हो ऽ ऽ ऽ राम रे
ऊपर टोला बस मुह में बोरा हो, देखो संसार ला कैसा।
कौन टोला मांदर बजे, कौन टोला टिमकी हो ऽ ऽ ऽ राम रें।
कौन टोला करमा रस है हो, देखो संसारे ला कैसा।।
खाल्हे टोला मांदर बजे, ऊपर टोला टिमकी हो ऽ ऽ ऽ राम रे।
खसा में करमा रस है हो, देखो संसार ला केस।।
धमपुरी बजार में तोरे हीरा रतन बिक जावे हो ऽ ऽ ऽ राम रे,
चतुर चतुर सौदा करे मूरख मन पधावे हो देखों।

djek >ej xhr &

वर्षो के इन्तजार के बाद जब मिलन हुआ जो शिकवा शिकायत की झड़ी लग गई। मुझे आशा थी कि तुम आओगे परन्तु तुम जो करमा गाकर हमारा मन ले गये। कुछ सोचा नहीं। अब पछताने से क्या होता है। सच सच बता दो। मैंने तो तुम्हारे लिये सबकुछ छोड दिया लेकिन तुम न जाने जितनी दूर भाग गये हो। करमा गीत में नहीं मन के भाव जुडे हुऐ है। देखिए मुडकी के गायको का ये करमा गीत।

आहा ये हाय/तोला आही कहो हाय, या जिन्दगी के पार ला
लगती कहो रे ऽ ऽ ऽ राम रे,
घम्मर घम्मर मांदर बाजे, भीतर आरो लेय ,, 2
आज के करमा का हमारे मन के टोला आये कहो हाय।।
एक पैसा के सौपा ले, जूरा मा लाटका लै,, 2
मादो वर के भरी जवानी देहा लरकत जय, तोला भांति कहो।
खर खर खर खर कलम चलत है कागज सरकत जाय, 2
बात ला बताये दे मनै की खुशी आय तोला आयो कतो।।
खावत के तो थाली छोडे पीयत के तो लौटा ,,2
खेलत के तारे संगी छोड़े फिरत हो अकेला तोहा आती कहो।।
लावा दुरकय, तीतर दुरकय और दुरकय मंजूर.. 2
बडे सबेरे उठकर देखू भग कै कितना दूर, तोला मांही कतो।।

djek ygdh :–

पहाड़ के पठार में गांव बसा है। नौ कोरी याने नौ बीसी घर है। मोर जहा पंख फैलाकर नाचते है,नील गाय बिफरकर कर चर रही है ऐसे गांव का मैं निवासी हूं फिर में तुझे ऐसा छिपा लूगा जैसे काली बदली में चंदा छुप जाता है। मैं तुझे पत्ते के जैसा उड़कार ले जाउंगा। मैंने सुआ के हाथोंकौयलिया के हाथो संदेश भेजा। तुम नही आए। सबकी जोड़ी है सिर्फ में अकेला घुमरहा हूं। अरे भाई किसी तरह निबाहोगे तभी तो बनेगा। (सुनिये लहकी करमा गीत में दो प्रेमियों के मन की बाते।

दादरया गॉव बसे नौकरी छानी मंजूर झाली भो जहां लील बगैर है ,,।

ये सिरजन हारा मंजूर झाली और जहां लील बगैर है। ...।

कारी बटुरिका में चंदा छिपे हो ... हाय रे।

वैसे छिपाया लो हो तोला मंजूर झाली जहां लील बगैर है..।

सड़कन सड़कन पत्ता उड़ते हो....हाय रे।

वैसे उडाय ले तो तोला मंजूर झाली ओ जहां लील बगैर है।।

कक्का के हाथों कागज लिख भेजो .....हाय रे।

सुआ के हाये संदेशा मंजूर झाली हो जहा लील बगैर है।

कारी कोइलिया कागज लै ये जो हो.... हाय रे।

उर भेंटा भेजों संदेश। मंजूर झाली ओ जहां लील बगैर है।

कलमी या ढलकी टांगे कंधे मा चिकारा हो,,,,हाय रे।

बाजार ला जावे लय ला पनही हो.....हाय रे।

धीरे बाने जरन जावे बन होगा मंजूर झाली जहां ....।

djek <k<h %&

बिछुडे हुए जो प्रेमी जोड़ा संयोग से जब कभी मिलते है तो अपने मन की पीड़ एक दूसरे को बहलाने के रूप में सुनाते है। सुनिए इस करमा गीत में तडपन मिलन और शिकवे को–

धन रे मनुख चोला परदा मॉ राखी तोला कै शेखदावे चोला दोहरे।

1

न मोला खाय जाये, न भोला पीये जाय हो...रे हो।
धोख परे पर कहू न सुहावै, धन रेमनुख चोला।

2

दी तीर में कैसे खड़े है पानी गदला होय हो,,, रे हो।
तुम छा गोरे हम सावरे कैसे मिलन होय रे। धन रे मुनख

3.

खडपड खडपड टांगय बालै आरी में करली फेंट हो,, रे हो।
गाड़ा सरई बाजार में आवे तब हो ही भेंटरे,, धन रे।

djek xhr %&

वर्षा की रात। प्रीतम की याद में सारे रात दिन मन तड़प रहा है। मन कहता है, ज्यादा प्रीत मत करना नही तो घबड़ाकर मर जाआगे। यहाँ मैने रात को सेवा के लिए तुम्हें बुलाया है। दिन में भी तुम्हारा स्वप्न देखती हूं। अरी बाई तुम हमारे पीछे आ जाना में ही तुम्हारे साथ अच्छा लगूंगा। हम दोनो जीवन में मौज करेंगे। विरह की तड़पन और मिलन का सुख भविष्य के सपने इस गीत में साकार हैं।

हाथ पानी बरसैय हाय पानी बरसैय हाय रात और बिहाने चोला तरसेय रे...।

झिरसिर पानी बरसै ओस गिर पतझर के।

आने माया झिन करबे मर जावे तें हदर के, पानी बरसेय हाय।।

मौहा के झरती कोहा के फरती..।

आधी रतिया बुलायों सेवा के परती, पानी बरसेय हाय।।

नदी के तीर मां पकरेला गुल हूँ..।

तोर संग वैया महिचखुल हूँ पानी बरसेय हाय...।

हाथ भर चुढ़ी पछारू ककना..।

दिन मां तो झूलम राते के सपना पानी बरसेया हाय..।।

गये ला तो डोंगर कटे ला साजा..।

दोनो झा करनों जियत के मजा.. पानी बरसेय हाय..।।

djek ygdh xhr %&

जीवन के हर व्यापार में प्रेम का रंग घुला है। प्रेमी से अनुरोध है खेत में नीदा कोंदो फेंकने चले, परन्तु संशय भी है कि चार के बीच में नजरों से कैसे बातें होंगी। प्रेम तो है, दूर का हो या पास का नजरें तो मिल ही जायेंगी। फिर कृषि कार्य की बात आती है। हार, पहोर जोत रहे हो पानी गिर रहा है काला कम्बल ओढ़ लो। मैं बोझा की रस्सी रख लेता हू। तुम कोदो झेकने के लिए हंसिया रखलो। बांस की पूठी निकाल कर खुमरी बनायेंगे। तभी तो कोदों और कुटकी से कोठी भरेगी। ये ही भाव इस गीत में पिरोये गये है :–

खेतय में कांद चल संगर रे.. हाय रे.. सब सगत कैसे मिला

वो नजरी रे...।

पथरा में ढौठ पथर जाये हो...।

दुरिहा के माया नजर डोली जाय हो... हब संगत..।

ओगर जोतों डोगर जोती अर जोतो टिकरा हो...।

पानी गिरथ खुमरी ओढ़ो ओढ़ो... हव संगत..।

गोरी तो डोरा उधरा बाधी हो...।

घर लेवेहसिया फेंके ला कांदी... हब संगत...।

पुठी तो काटय ढानाके खुमरी...।

कोदो श्रोर कुटकी से भरही बरवरी... हव संगत।।

djek o"kk xhr %&

आकाश में बादल घिर आये है, खुशी में मेरा हृदय लहरा रहा है। झर झर पानी बरस रहा है नाले एवं नदियां में बार आया है। चतुर किसान कंधे पर हलघर के और छतरी लगाके खेतों में निकले हैं रूखे खेतों में जवानी फूट पड़ी है खेतो में हरी हरी फसल लहरा रही है, कोदो एवं कुटकी भर जायगी और सब विपत्ति दूर हो जाएगी।

बादर घुमड़ गिर जाये खुशी में मेरा हीरा जिया लहराये।

झर झर झरझर पनिया बरास रहे।

नाला नदी उतराये खुशी में मोरा हीरा लहराये।।

कांधे में हलधरे चतुर किसान।

निकरे हैं छतरी लगाये खुशी में मोरा हीरा जिया लहराये।।

रूखे सूखे खेतन में फूटे जवानी।

हरिया फसल लहराये खुशी में मोरा हीरा लहराये।।
कोदो और कुटकी से भर गए बखेरी
सबका विपत कट जाये खुशी में मोरा हीरा जिया लहराये।।

djek cnjk xhr %&

आकाश में चारों ओर काले बादल घुमड़ रहे है। वे किस तरफ घुमड़ते हैं। कौन तरफ गरजते हैं और कौन तरफ बरसते है काले बादल धुमड़ रहे है।

वे पूरब की तरफ घुमड़ते है पश्चिम की तरफ गरजते है पर बरसते पहाड़ की तरफ हैं। काले बादल चारों तरफ घुमड़ रहें हैं।

घमड़ रहे चारों खूट कारे बदर घुमड़ रहे,
कौन पटी घमड़े को पटी गरजे।
कौन पटी बूंदा ला चुहाये कारे बादर धुमड़ रहे।।
अगुम पाटी घुमड़े पटुम पाटी गरजें।
डोगर पाटी बूंदा ला चुहाये कारे बादरा घुमड़ रहे।।
अगुम पटी उधरे पहुम पटी गरजे
डोगर पटी कोटी भर जाये कारे बादर धुमड़ रहे।।

djek fcjg xhr %&

बिना देखे ये हृदय नहीं मानता है, खाना पानी छूट गया और आग के पास बैठे बैठे सारी रात कट जाती है। ये शरीर नहीं

मानता। झाड़ी जंगल नदी नाले सब ढूंढ लिया तुम कहां निकल गए हो। नहीं मिलते हो आम के बगीचे में कोदो के खलिहान में बैठे बैठे और तुम्हारे संगत को सोचते सोचते सबेरा हो जाता है शरीर के भीतर आग जलती है ऊपर से धुंआ निकलता है। आंसुओ की नदी बहती है जब तुम्हारी याद आती है। तुमने मेरी याद कैसे भुला दी गली गली तुम्हें ढूंढ रही हूं य जीव पन्ने के समान उड़ रहा है।

ओ हो हाथ बिन देखे पराना चोला नहीं आने रे।
लोटा के तो पानी छुट ओर थारी के भात।
कोंड़ा ढ़िगा बैठे बैठे कट जाथै यह रात चोला..।।
दादर झांवर तोला ढूंढा डोंगर बीच मझाय।
सब पतेरन तोला ढूंढो कहां निकर गय जाय चोला।।
आमा के अमरैया कैसे और कोदो, खरिहान।
मन में घोलत घोखत सगी हुई जाथै बिहान चोला।।
चोला भीतर आगी बरथे ऊपर ते गुगु आवे।
असुअन के तो नन्दी बोहथै सबै सुरता आवै चोला।।
कैसे मा तो माया छोड़े सुरता मोर भुलाये।
गली खोरी तोला खोनो हंसा रैन उड़ाये चोला...।।

djek yxMk %&

जिस पक्षी को प्यार से पाला है उसे मत मारो। लोहे के पिंजरे में यह भोला सा पक्षी, प्रेम के फसके भूल गया है। अरे पक्षी तू तो दूर देश का है। भग जायेगा फिर हमारी याद नहीं करेगा। रेत में लगा हुआ वृक्ष और चुनहटी का चूना पानी के बिना मर जाते है। मूर्ख पतिंगा दीपक के जलती हुई बाती में बिना सोचे समझे जल जाता है। महुल पत्ते की ढोला में करोंदा पौधे की छांव में जी भरके सूठ खेल लो।

झिन मारे रे पोसे परोना ला झिन मारो रे।
लाहा के पिंजरा में भोला सा पंछी।
मांया में फंसके भुलाय भला झिन मारोरे।।
भग जावे पंछी ते तो दूर देशन में।
न करने सुरता हमार भला झिन मारो रे।।
रेती का बिरछा चुनहटी का चूना।
पानी बिन मर जाय भला झिन मारो रे।।
दिया की बाती में मुरख पतगा।
सोचे बिन जर जाये भला झिन मारो रे।
माहुल के बेला करोदा की छैया।
खुल खेले हसां श्रघाये भला झिन मारो रे।।

djek uR; d iidkj %&

यूं तो करमा नृत्य के अनेक शैलियां है लेकिन छत्तीसगढ़ में पांच शैलियां प्रचलित है, जिसमें झुमर, लंगरा, ठाढ़ा, लहकी और खेमटा है, जो नृत्य झूम झूमकर नाचते है उसे झुमर करमा कहते है। लहराते हुए नृत्य करने को लहकी कर्मा कहते है। एक पैर झुकाकर नाचे जाने वाले नृत्य को लंगड़ा करमा कहत, आगे पीछे पैर रखकर, कमर लचकाकर किया जाने वाला नृत्य खेमटा है, खुशी की बात ये है कि छत्तीसगढ़ का हर गीत इसमें समाहित हो जाता है, कर्मा नृत्य में स्त्री पुरूष सभी भाग लेते है, वह वर्षा ऋतु को छोड़कर सभी ऋतुओं में नाचा जाता है, सरगुजा के सीतापुर के तहसील रायगढ़ के जशपुर और धरमजयगढ़ के आदिवासी इस नृत्य को साल में सिर्फ चार दिन नाचते है, एकादशी करमा नृत्य नवाखाई के उपलक्ष्य में संतान की प्राप्ति, संतान के लिए मंगल कामना, अठई नामक कर्मा नृत्य और दीपावली के दिन कर्मा नृत्य युवक–युवतियों के प्रेम सराबोर होता है।

o'kHk"kk ¼oL=@ vkHk"k.k½ %&

करमा नृत्य में मयूर पंख का झाल पहनते है, पगडी में मयूर पंख के कांडी का झालरदार, कलगी, खोचता है, रूपया, सूता, बहुटा और करधनी। जैसे आभूषण पहनता है, कलई में चूरा और बांह में बहुरा पहने हुए यूवक की कलाइयों और कोहनियों का झूल

नृत्य की लय में बड़ा सूंदर लगता है, नृत्य की शैलियों बदलती है। इसमें गीता के टेक समूहगान के रूप पदांत में गुंजते रहते है। पदों में ईश्वर के स्तुति ये लेकर श्रृंगार परक गीत होते है, मांदर और झांझकी लय–ताल पर नर्तक लचकलयात्मक कर भांवर लगाते हिलते डुलते, झुकते, उठते ये वृत्ताकार, नृत्य करते है।

उपवास कर्मा की मनौती मानने वाला दिन भर उपवास रखता है और अपने सगे संबंधियों और पड़ोसियों को न्योता देता है, शाम के समय करमा वृक्ष की पूजा की जाती है फिर टंगिये के एक ही वार से डाल को काटा जाता है,उसे जमीन में गिरने नहीं दिया जाता,उस डाल को अखरा में गाड़कर स्त्री–पुरूष रात भर नृत्य करतेहै, सुबह डाल नदीं में विसर्जित कर देते है, उस अवसर पर गीत भी गाते है। उठ–उठ करम सेनी पाही गिस विह़ान हो

चल–चल अब गंगा असनांद न हो।

नाक में फूल्ली, नथ, नथनी, लवाग, बुलका, धारन करने का प्रचलन है, गाला में सूता, पुतरी, कलदार, सुर्रा, संकरी, तिलरी, हमेल, हसली जैसे आभूषण गले में शोभित होते है।

बांजू, कलाई और ऊंगलियों, चुडी, बहुटा, कड़ा, हरहय्या, बनुरिया ककनी, नागमोरी, पटटा, पहुंची, ऐठी, मुंदरी (छपही, देवरही, भवर ही) पहना जाता है।

कमर में भारी और चौड़े कमर बंध– करधन, पहनने की परंपरा है और पैरो में तोड़ा, साटी, कटहर, सूखा पैजम, चुटकी, विछिया (कोतरी) पहना जाता है, बधनखा, ठुमड़ा, मथूंला, झूगवा, ताभिज आदि बच्चो के आभूषण है। तो पुरूषों में चुरवा, कान की बारी, गले में काठी, पहनने का चलन है, छत्तीसगढ़ की संस्कृति में आभूषणों की पृथक पहचान व बानगी है।

आदिमयुग से ही प्राकृतिक और वनस्नपतिक उत्पादक से लेकर समाजिक विकास काम में बहुमूल्य धातु और रत्नों का प्रयोग होता रहा है, लकड़ी, बास, फूल, पत्ती, पंख, कांच, कौड़ी और पत्थर जैसे अपेक्षाकृत सौभाविक और आकर्षक लगने वाले मोल रहित पदार्थो को सौंदर्य–बोध से अपना कर उनसे सजा संवारा गौख, सौदंर्य के फल, स्वरूप है, वही बहुमूल्य धातुओं और रत्नों के निविध प्रयोग से छत्तीसगढ़ आभूषण, राज्य की सांस्कृतिक और कलात्मक गौरव गाथा के समक्ष प्रतीक है।

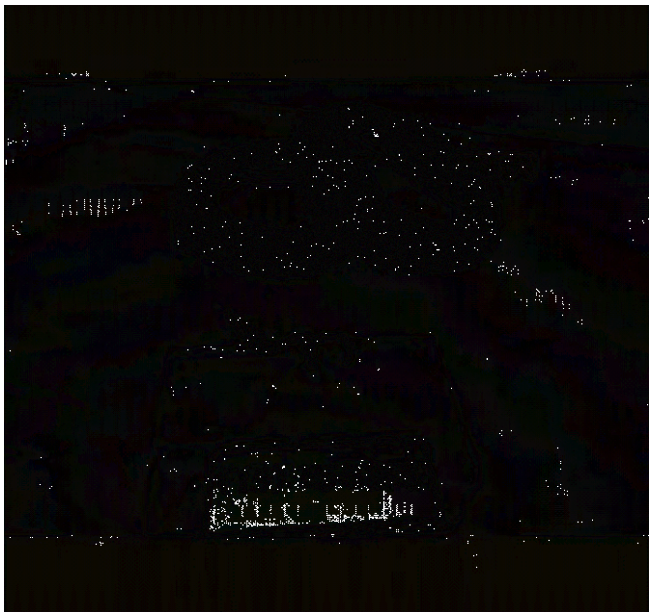

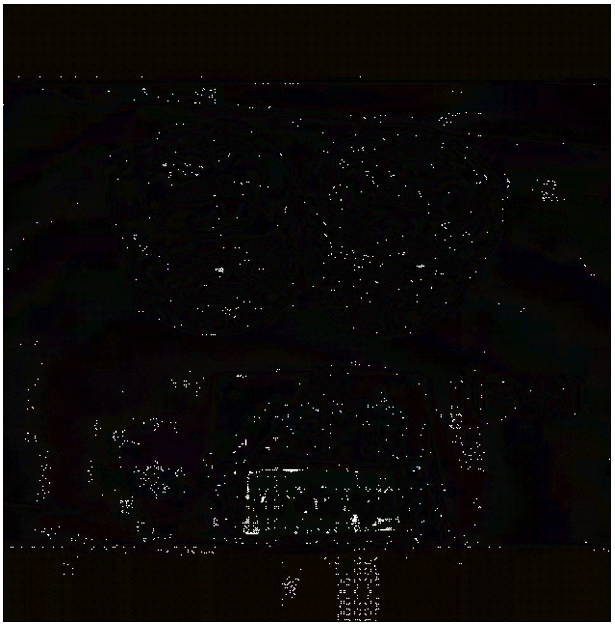

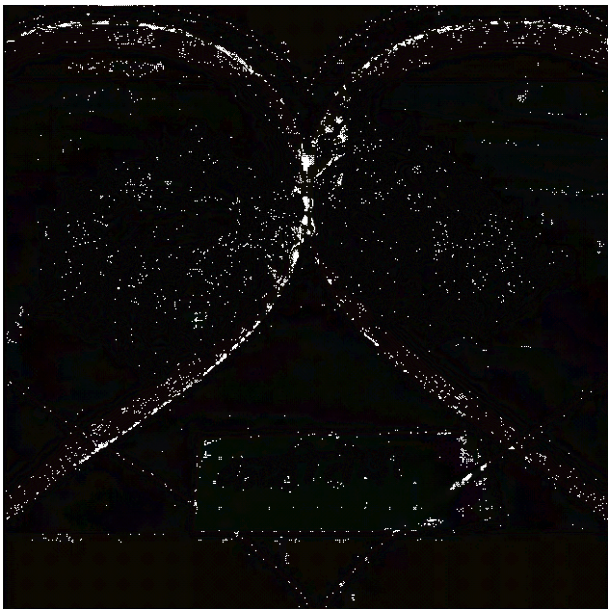

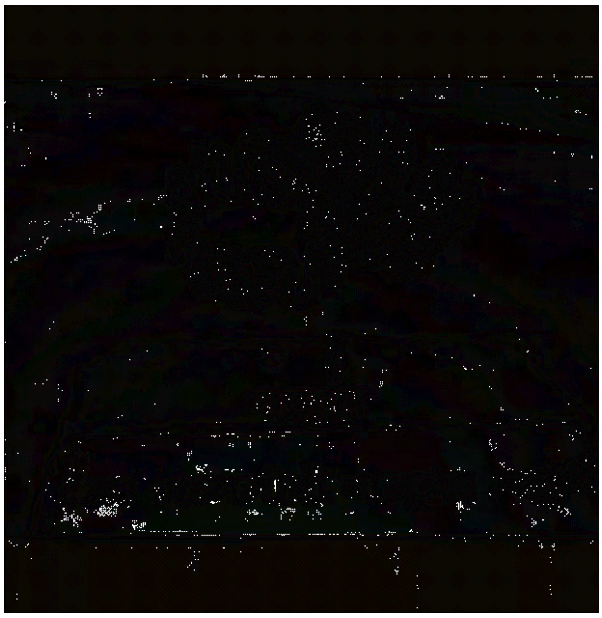

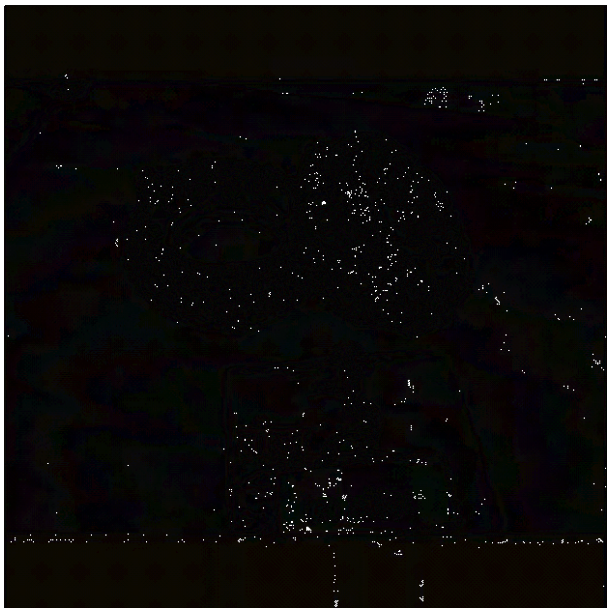

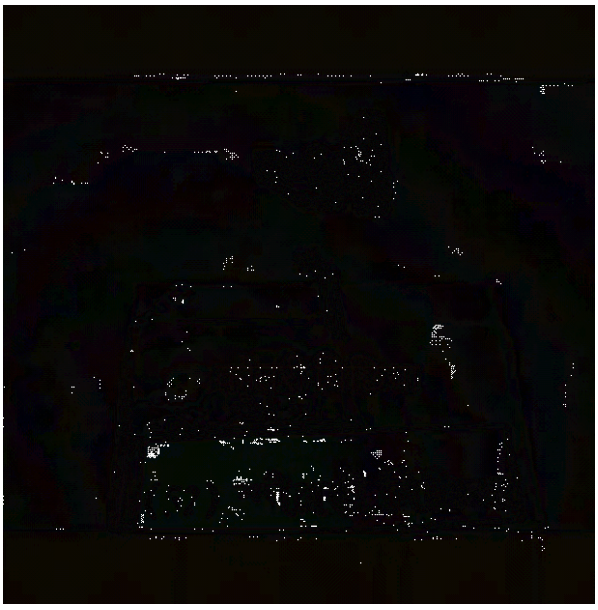

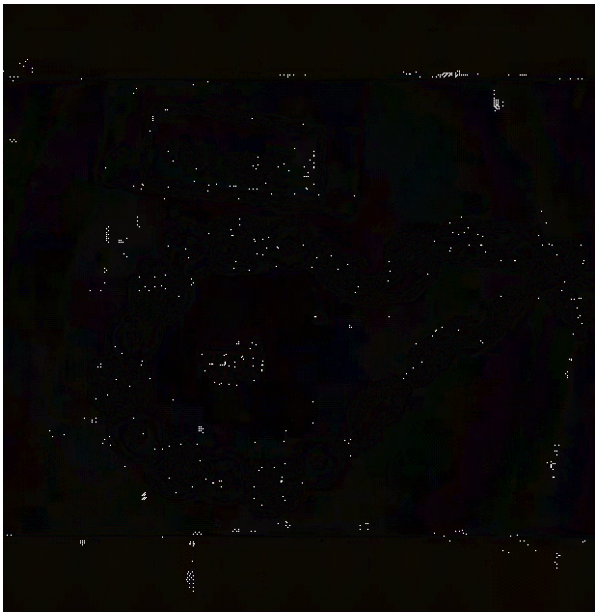

xkuk %&

गोदना की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। न ही सिर्फ भारत वर्ष में बल्कि विदेशों में भी। जैसे अफ्रीका, आस्ट्रेलिया में भी, अमरीका में लोग गुदना के साथ कुछ गुणो को जोड़ते है, जैसे अगर किसी के शरीर में बहुत सारे गोदना के चिन्ह है तो वह व्यक्ति बहुत साहसी है। साहसी तो उन्हें कहना चाहिए क्योकि इस गोदने की प्रथा में शरीर में बहुत व्यथा होती है, फिर भी वे करता है।

यह प्रथा एक कला है। अंग प्रत्यंग को सुन्दर बनाने की भावना के कारण ही गुदना की जाती है। इसके साथ हुई लोक विश्वास जुड़े हुए है, जैसे कुछ जनजाति का यह मानना है कि गुदना का चिन्ह अगर शरीर में है तो उसे नज़र की नगेगी।

गोंड जनजाति गुदना को काला कुत्ता जैसे मानते है काला कुत्ते को समाज बहुत अशुभ मानता है और उसे कोई चुराता नहीं। उसी तरह जिस शरीर में गुदना का चिन्ह है उसे कोई नहीं चुरायेगा। गुदना के साथ सक्षमता को जोड़ा जाता है। जैसे गोंड जाती के लोग यह मानते है कि जो बच्चा चल नही सकता चलने में कमजोर है उसके जाँघ के आसपास गोदने से वह न सिर्फ चलने लगेगा, बल्कि दौड़ना भी आरम्भ कर देगा। लोक मानते है कि गोदने कारण शरीर में बिमारियों से बच जाता है। मनुष्य स्वस्थ रहता है। जैसे सुई शरीर में चुभाकर एक्यूपंचर (Acupunture) कई बिमारियाँ दूर करते है। उसी तरह गोदना भी शरीर को स्वस्थ

रखने मदद करती है। सुई से अगर ठीक ठीक नर्भस (Nerves) को छुआ जाते, तो शरीर का स्वस्थ होना संभव है। कुछ लोगों का यह मानना है कि गोदना कारण आत्मायें क्षति नहीं पहुंचा सकती। गोदना बालोर का रस और बबूल के काटे के द्वारा। बबूल के कांटे को बालोर के रस में डुबों कर शरीर में उस कांटे को शरीर में चुभाकर गोदना गुदवाये जाते है। बैगा जनजाति कवर्धा (बिलासपुर) में रहते है, वे गुदना को बहुत अहमियत देते है। गोदना प्रथा के लिऐ भिलवां रस, मालवन वृक्ष रस या रमतिला के काजल को तेल के धोल में फेंटकर उस लेप का इस्तेमाल किया जाता है। आठ के उम्र में पहला गोदना गुदवाना प्रारम्भ होता है, महिलाएं शादी के बाद भी गुदवाती रहती है, स्त्री गुदना गुदवाने को अपना धर्म मानती है, जो स्त्री अपने पर गुदना गुदवाती है उसका मान समाज में बढ़ जाता है, कपाल, हाथ, जांघ, छाती, पर गुदवाते है बरसात के महीने में गुदना नहीं गुदवाते है बाकी किसी भी समय गुदना गुदवा सकते है। पुरूष गुदना एक चिन्ह के रूप राम, गदा, त्रिशुल, बाना गुदवाते है। कई जातियों में गोदने वाली महिलायें होती है जो गोदने की कला में निपुण है। जो जातियों सबसे ज्यादा निपुण है वे है वादी, देवार, भाट, ओझा। गोदना की आकृतियां कई प्रकृति से संबंध है। जैसे विच्छू, मोर, सूर्य, तारा चन्द्रमा, सिहासंन, धरती वृक्ष, अश्व, पूजा और ना जाने कितनी आकृति।

इनकी अपनी कुछ मान्यता है यदि गुदना नहीं किया गया तो भगवान भरते समय सब्बल से गोदेंगें ऐसा मोर आजी कहती थी,

रूपया पैसा सब छुट जायेगा, यही चिन्ह हमारे साथ रहते है, वर्ना जलाते समय या गाड़ते समय तन पर सन की एक सुतली तक नहीं रहने दिया जाता। गुदना का दान किया जाता नतिहाल द्वारा।

गुदना बहुत ही प्राचीन और बहुत ही मनमोहक कला है। करमा नर्तक के महिला कलाकार अपने तन पर यह प्रकृतिक आभूषण गुदवाते है।

वस्त्र : करमा के कलाकार वस्त्र सामान्य घर में जो पहनते है वे होते है। मंच पर आने के लिए कुछ मंचीय वेशभूषा पहनते है लुगरा (झाड़ी) लाल रंग लुगरा माड़ी (धुटना)के ऊपर, पोलखा (ब्लाऊज) पटटी वाली, सिर पे मोती माला, खोपा में फुदंरा, कलगी (मोर पंख की)

आभूषण : हाथ में ऐढी, बांह में बहुरा नाम मोटी, पटटा

छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विशेषता का सौन्दर्य यह है कि आभूषणो में निहित है उम्र वर्ग समाजिक दर्जे और भौवलोकिक कारक से वर्गीय किरित होता है, आभूषणों का भेद, इसे व्यापक और समृद्ध कर देता है आभूषणों के रूप में सौन्दर्य की कलात्मक चेतना का एक आसयाम हजार साल से जीवन है और आज भी सुनहरे रूपहले पन्नों की तरफ प्रकट है। प्राकृतिक एवं अंचल श्रृंगार, मानव के श्रृंगार यहां सोना, चांदी, लोहा, अष्टधातु, कांसा, पीतल, गिलट, जर्मन आदी कुशकुट (मिश्र धातु) मिट्टी, काष्ठ, बांस लाख के गहने प्रचलित है सोलह श्रृंगारो गहना, ग्रहण करने के अर्थ में है और आभूषण अर्थ अलंकरण है जनजातीय आभूषणो पर

गोत्र चिन्ह अंकित करने कह प्रथा है आभूषण धार्मिक विश्वास, दाशर्णिक, चिंतन, सौन्दर्य बोध और समाजिक संगठन का भी परिचायक होता है।

शरीर के विभिन्न हिस्सों में से सिर के परांपंगत आभूषण बाल, जुड़े, व चोटी में धारण किय जाते है जिसमें जंगली फूल, पंख, कौडिया, सिंगी, ककई, कंघी, मांग मोती, पटिया, बेंदी प्रमुख है। चेहरे पर टिकुली के साथ के साथ कान में, ढार, तरकी, खिनवा, आयरिक, बारी (बाली), फल संकरी, लुढ़की, नवाग फूल, खुटीकरण फूल, तितरी धारण की जाती है।

lxhr %&

संगीत में नाद ब्रह्म की चर्चा की जाती है और आध्यत्म में अनहद की नाद शरीर के भीतर आत्मा में पैदा होने वाला संगीत है शरीर से बाहर यह नाद केवल वाद्यों की संगति से पैदा किया जा सकता है ज्ञानियों ने बताया है कि यौगिक क्रियाओं के आश्रय से कुण्डलिनी जागरण और सहस्रार में 'अनहद' को जगाया जाता है, जो स्वर्गिक संगीत होता है। यही संगीत नाद ब्रम्हा कहलाता है संगीत का प्राण नाद है। विश्व के कण कण में संगीत परमात्मा के अंश की तरह व्याप्त है कहीं अव्यक्त और कहीं व्यक्त। बादलों का गर्जन, नदियों–झरनों की कल निनाद करती जलराशि, जंगलों–पहाड़ो में पक्षियों का कलरव ये सब शाश्वत संगीत का विवधि रूप ही तो है।

शैव परम्परा से डमरू, शात्क से वीणा और वैष्णव से बांसुरी क्रमशः धन तंतु और सुषिर वाद्य की उत्पत्ति कथाओ से संबंध है। इस दृष्टि से संगीत भारतीय ज्ञान परम्परा की समग्रत का उद्घोष है। लोक का संगीत इन तीनों ही बाध्य प्रकारों की संगति से अपने गायन नर्तन की भावाभिव्यकि्त करता रहा है।

बाजे ने मानव को उल्लास दिया या उल्लासित होकर मानव ने बाजे का प्रयोग किया, कहा नहीं जा सकता मगर यह जरूर सोचा जा सकता है कि मानव बाजे का सर्जक है, चिर सखा और सफल प्रयोग धर्मा रहा है। मानव की क्रियाशीलता कल्पना और हाथों के प्रयोग की कुशलता इसी में रही है कि उसका विचारित काम हो गया बस यहा बाजे के साथ भी समझा जा सकता है कि बज गया तो बाजा और बिगड़ गया तो भाड़। बाजा भी तब तक बाजा है, जब तक कि वह बजता है या बजने का सामर्थ रखता है। बाजे के बिना संगीत पूरा नहीं होता है। शास्त्र तो कहता है

गीतं वाघं नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।

वाद्य सर्जको ने समस्त वाद्यों से निकलने वाले प्राणी जगत के स्वर की समानता को बहुत पहले ही खोज लिया था बहुत संभव है कि प्रागैतिहासिक काल में जबकि मानव गृहावासी था और आखेट पर निकलता होगा, तब वह वाद्यों का सहारा लेता था, और उनके स्वर का प्रयोग शिकार को आकर्षित करने के लिए करता रहा होगा। जैसा कि साँपो को लुभाने के लिए आज भी बीन वादन किया जाता है, जबकि अब यह जान लिया गया है कि सांपो के कान ही नही होते हालांकि इसके मूल में आखेट की

सफलता के बाद अभुरंजन भी रहा ही होगा। जैसे ग्रंथो का मत है कि षड़त्र स्वर की ध्वनि मयूर के जैसी होती है। वृषश्रस की ध्वनि गाय के रम्भाने के जैसी होती है। गांधार की ध्वनि बकरी की जैसी होती है। मध्यम की ध्वनि कौच्च पक्षी की नारी जैसी है, पञचम की ध्वनि साधारण समय में पुष्पों में बैठी कोयल की सी होती है। धैवत् की ध्वनि घोड़ो के हिनहिनाने के जैसी होती है। निषाद की ध्वनि हाथी की चिड़ाहने के जैसी होती है कण्ड से षड़त्र की ध्वनि का उच्चारण होता है। शीर्ष से ऋषभ तथा नासिका से गान्धार का डर यानी हृदय से मध्यम का उच्चारण होता है, हृदय, शीर्ष व कण्ड से पञचम तथा तालु से धैवत का उम्हव होता है। निषाद सब तरह से जाना जाता है। इतने स्वरों के स्थान कहे जाते है।

ok?k;= %&

करमा नृत्य में मांदर और झांझ–मंजीर, प्रमुख वाध्यचंण है, इसके अलावा टिमकी, ढोल, गुदूम, मोहरी, बांसुरी, अगगोला, बांस के खर्रट, आदि का प्रयोग होता है। इन वादयों यंत्र के निर्माण प्रकृति का लोक कलाकारों से मिलने पर अपनी हर वाद्य की अपनी एक कहानी है, जन्म के इन वाद्यों की आवाज की जिसका विस्तार से वर्णन करने की प्रयास है।

मांदर

झांझ

मंजीरा

मोहरी

टिमकी

गुदूम

बांसरी

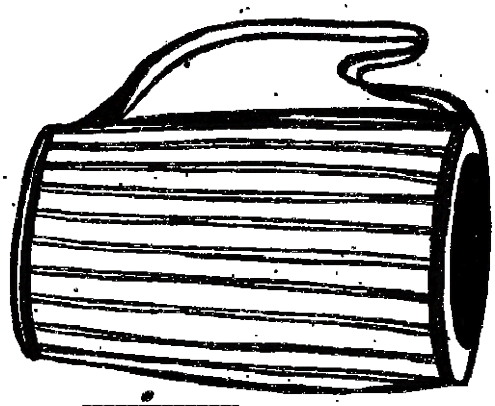

मांदर

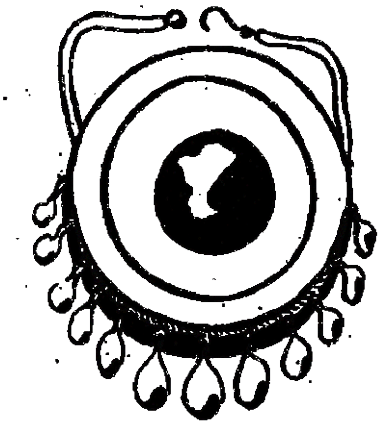

गुदुम (सींग बाजा)

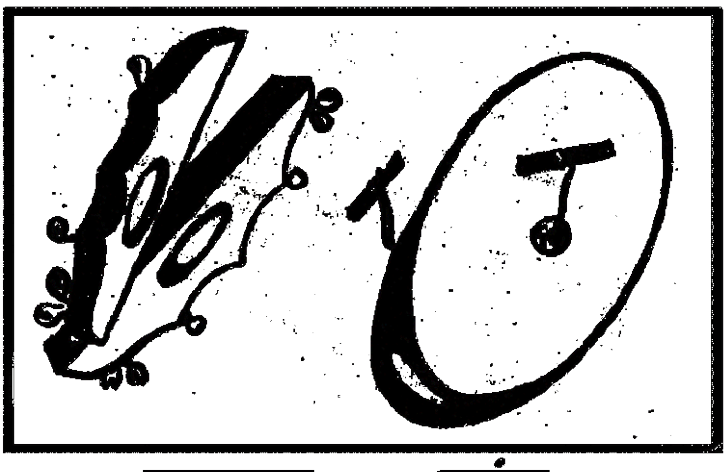

करताल झांझ

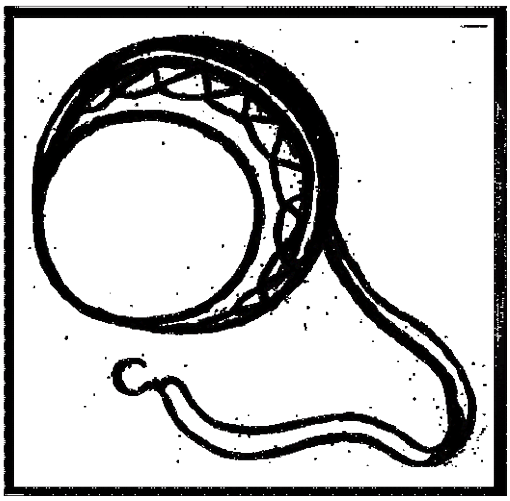

टिमकी

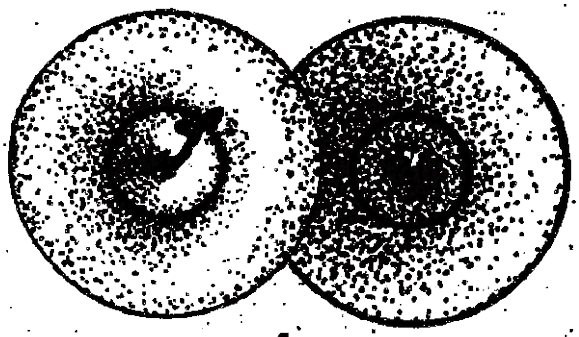

झांझ

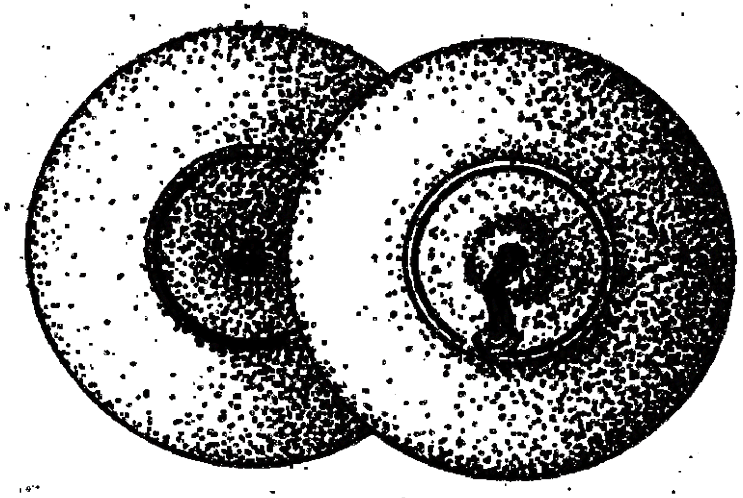

झांझ

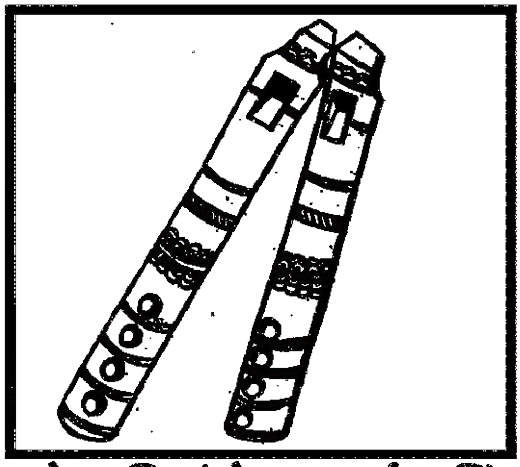

दोहरी (जोड़ा बांसुरी)

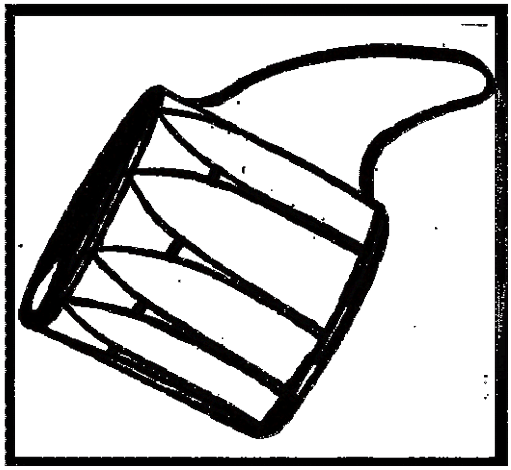

आदीवासी ढोल

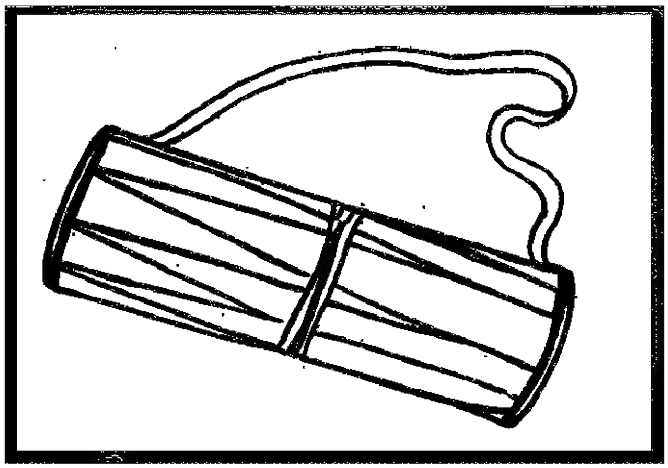

माड़िया ढोल

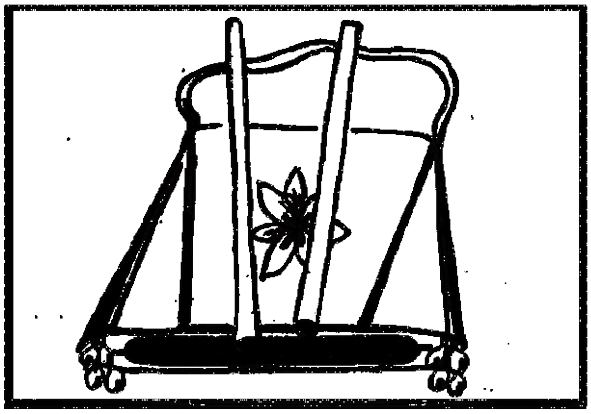

ठड़का

दफड़ा
नकडेवन
पुंगी

मंजीरा

घण्टी

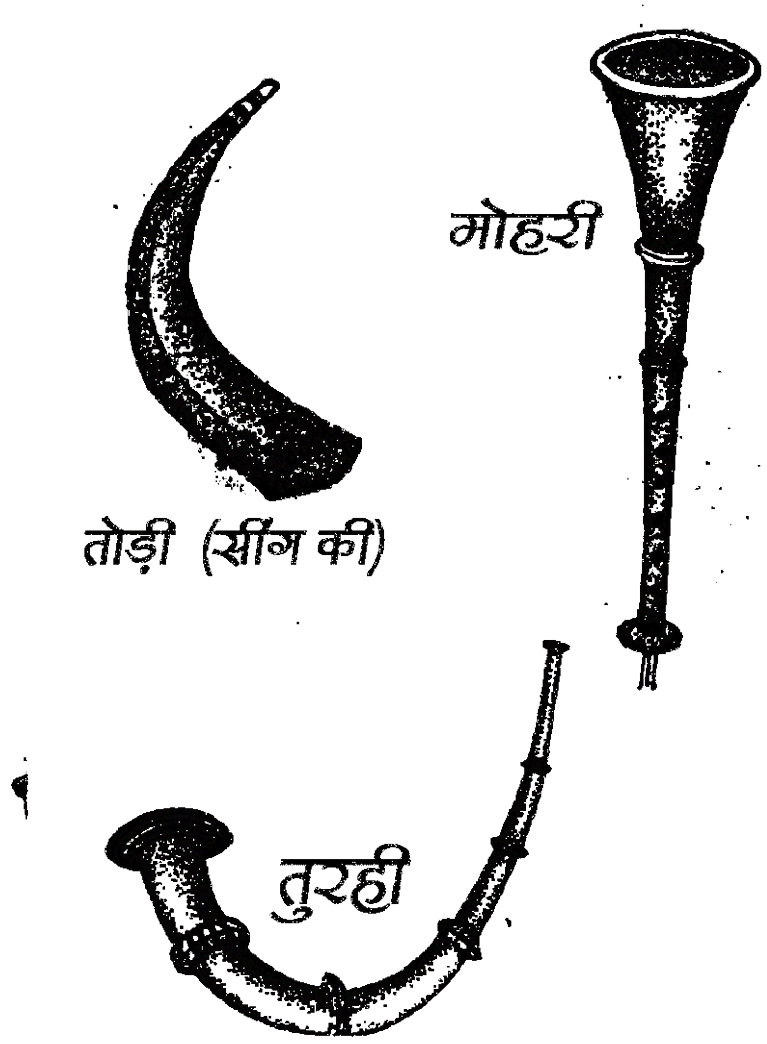
मोहरी
तोड़ी (सींग की)
तुरही

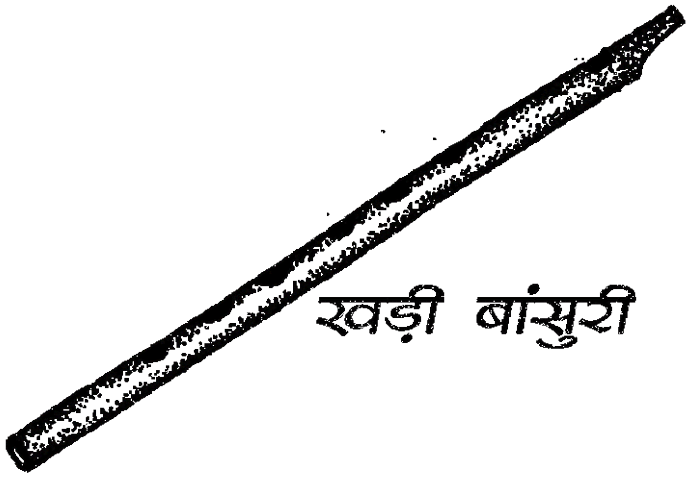

खड़ी बांसुरी

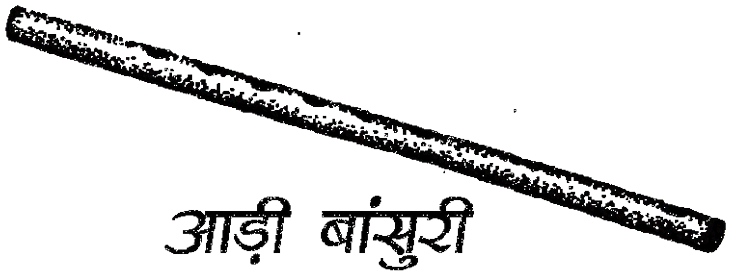

आड़ी बांसुरी

rky okn; eknj&

छत्तीसगढ़ में मांदर, नगाड़े, ढोल आदि अनेक आकार प्रकार में प्रचलित है। मांदर मृढंग का उपभ्रंस है। बड़ा मांदर 84 घर का ओर छोटा 64 घर का होता है। मांदर बनाने का काम घसिया जाति के लोग करते है मिट्टी का कुण्डा या मांदर का खोल कुम्हार बनाता है, मिट्टी का खोल पकाकर उसपर बकरे का चमड़ा मढ़ा जाता है, तथा कसने के लिए चमड़े की डोरी लगाई जाती है। मांदर का गद सराई के गोंद में कांच के चूरे को मिलाकर चमड़े पर लगाकर बनाया जाता है। मांदर पखावज की तरह की ही वाद्य होता है।

आदिवासी अपने नृत्यों के साथ मांदर की ताल पर ताल बध्य कर नृत्य करते है। इसकी ध्वनि वनांचल में दूर–दूर तक गूंजती है। मांदर में प्रकृति के बादल की गरज गंभीर आवाज सुन नवयवना, किशोर–किशोरी घर से बरबस निकल पड़ते है ये मांदर की शक्ति है।

fVedh %& मिट्टी को घड़ा नुमा पात्र बनाकर भट्टी में पकाया जाता है, पकी हुई टिमकी पर बकरे चमड़ा चड़ाकर इसे तैयार करते है, लकड़ी की दो छोटी डण्डी से बनाया जाता है, प्रकृति के बिजली की कड़क को अपने में समाहित किये हुए है।

>k> % प्रायः लोहे का बना होता है लोहे के दो गोल टुकड़े जिसके मध्य में एक छेद होता है, जिस पर रस्सी व कपड़ा हाथ में पकड़ने के लिए लगाया जाता है। दोनो एक एक टुकड़े को एक हाथ में पकड़कर बजाया जाता है।

ethjk % झांझ का छोटा स्वरूप मंजीरा कहलाता है, मंजीरा धतु के गोल टुकड़े से बना होता है। जिसके दोनो टुकड़ो को घात करने से स्वर निकलती है।

ekgjh % यह बांसुरी के समान बांस के टुकड़ो का बना होता है, इसमें छः छेंद होते है। इसके अंतिम सिरे में पीतल, कटोरी नुमा टार्न लगा होता है एवं इसे ताड़ के पत्ते के सहारे बजाया जाता है।

xne % (निशान) यह लोहे के कढ़ाई नुमाकार में चमड़ा मड़ा जाता है, चमड़ा मोटा होता है एवं चमड़े को ही रस्सी से खिचकर कसा जाता है। लोहे के वर्तन में अखिरी सिरे पर छेद होता है, जिस पर बीच में अंडी तेल डाला जाता है एवं छेद को कपड़े से बंद किया जाता है। ऊपर भाग में खरवन तथा चिट लगाया जाता है, रब्बर के टुकड़ो का बठेना बनाया जाता है। जिसे पीठ पीटकर बजाया जाता है, इसके बजाने वाले को निशानीरची (गुदमाहा) कहते है। इसकी गमकदार स्वर बरबस करमाहा को नाचने के लिए आकर्षित करती है और लोक कलाकार खीचे चले आते है।

^^ykd okn;ksa dh mRifÙk dh nUr dgkuh**

Mk- vuqi jatu ik.Ms; th ykd dyk ,oa vkfnokLkh ykd okn; ,oa cLrj cSM ds lLFkkid ls ,d eqykdkr es ;g djek ,oa vU; okn;ksa dh dgkuh lquhA

मुरिया जनजाति के देवलोक में लिंगो का महत्वपूर्ण स्थान है। लिंगो घोटुल के देव हैं और उनकी रक्षा करता है। लिंगो ने ही उन्हें संगीत–नृत्य सिखाया है। लिंगो ने ही उन्हें वाद्य यंत्र भेंट किए हैं। लिंगो पाटा गीतों में इस बात का वर्णन मिलता है। लिंगो की प्रशस्ति में गाए जाने वाले एक गीत में इस मिथक का सम्पूर्ण वर्णन मिलता है। इस गीत का भाव इस प्रकार है–

'हे युवक! लिंगो के पास अठारह वाद्य हैं। उनमें से बारह वाद्य राजा के हैं। लिंगो नरबलि लेते हैं। महुए के वृक्ष से सारंगी बनाते हैं। कमर में वो ढोल धारण करते हैं। पाँवों में सिड़ंगो पहनते हैं। कंधे पर छोटा ढोल तथा घुटनों पर कुटुड़की धारणकरते हैं। ओठों पर बाँसुरी, नाक में मोरचंग। हमें लिंगो ने नाचना–गाना सिखाया। एक अन्य गीत में भी लिंगो के वाद्यों का वर्णन मिलता है। कन्धे से लटकने वाला ढोलराय वाद्य। बाहों पर लटकने वाला हुकुमराय वाद्य। पैरों में पेरी तथा सीने पर ढुसिर वाद्य। नाक से बजने वाला मोरचंग तथा मुख से बजने वाली बाँसुरी।'

गीतों में प्राप्त उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि लिंगो प्रथम देवता है, जिन्होंने न सिर्फ मुरियों को गायन एवं नृत्य में प्रशिक्षित किया, वरन् उन्हें अठारह प्रकार के वाद्य भी दिए।

e'nx % mRifÙk dFkk

मृदंग एक अवनद्ध वाद्य है, जिसका उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। मृदंग का प्राचीन नाम मुरज है। ऐसा कहा जाता हैकि– एक बार भगवान शिव कैलाश पर्वत पर ध्यान लगाए बैठे थे, उसी समय 'मुरज' नाम का एक असुर वहाँ जा पहुँचा और उनके ध्यान में नाना प्रकार से विघ्न पहुँचाने लगा। शिव ने उसे रोका, तो दोनों में युद्ध होने लगा और उस युद्ध में मुरजासुर मारा गया। उसका शव वहीं पड़ा रह गया, जिससे सिर तथा हाथ–पैर अलग हो चुके थे, इस शव को कुछ गिद्ध माँस–भक्षण के लिए उठा ले गए, किन्तु शव अधिक भारी होने के कारण उनके पंजों से छूट गया और एक वृक्ष के ऊपर जा गिरा। कुछ माँस पक्षी खा चुके थे, कुछ सूख गया। उस शव के दोनों सिरों पर चमड़ा सूखकर बन्द हो गया। वह इसी स्थिति में वृक्ष पर पड़ा रहा एक समय तेज हवा चलने से वृक्ष की टहनियाँ जोर–जोर से हिलने लगी और उस सूखे हुए शव पर आघात करने लगी। टहनियों के आघात से उसमें कुछ ध्वनियाँ उत्पन्न होने लगी। संयोग से उसी समय शिव उसी ओर से जा रहे थे। उन्होंने जब यह रोचक ध्वनियाँ सुनी तो वे उत्सुकतावश रूक गए। ध्यान देने पर उनकी समझ में आया कि यह ध्वनि कहाँ से आ रही थी। निकट जाकर उन्होंने उस चर्ममण्डित आकृति के दोनों सिरों पर अपने हाथ से

आघात करके देखा, जिसके फलस्वरूप 'ता'–'धीं'–'धों'–'दें' आदि वर्णों की उत्पत्ति हुयी।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् शिव–पार्वती के साथ अपने गणों द्वारा बनायी गयी पर्ण–कुटी में बैठे हुए थे। उसी समय वर्षो की कुछ बूँदे कुटी के पत्तों पर पड़ी। उनसे जो ध्वनि उत्पन्न हुयी, वह पार्वती जी को बहुत अच्छी लगी। पार्वती जी की इच्छा हुयी कि ऐसे किसी उपकरण का निर्माण होना चाहिए, जिससे इस प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न की जा सकें। इससे शिव को उस 'मुरज' का ध्यान आया और कालान्तर में इसके आधारपर वाद्य यंत्र का निर्माण हुआ, उसे 'मांदर' या मृदंग नाम से जाना गया।

ykd ok| %&

वाद्य वर्गीकरण के विषय में सर्वप्रथम भरत मुनि ने नाट्य–शास्त्र में चार वर्ग माने हैं।

यथा–

तंत चैवावनद्ध च धनं सुषिर मेव च।

चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोय लक्ष्मणान्वितम्।।

– अर्थात् तत् या तंत्रीयुक्त वाद्य, अवनद्ध या चर्म–आच्छादित वाद्य, घन या करतालादि वाद्य और सुषिर यानि वंशदि वाद्य। भारतीय संगीत शास्त्र में भरत मुनि का वाद्य वर्गीकरण ही सर्वाणिक प्राचीन, सर्वश्रेष्ठ माना गया है, जिसका बहुत अल्प रूपान्तर के साथ विद्वानों द्वारा अब तक प्रयोग होता रहा है।

तत् वाद्य– वे तोर के वाद्य जो कि मिजराब से बजाए जाते हैं, जैसे– तम्बूरा, तुनतुना, बैंजो आदि तत् वाद्य कहलाते हैं।

वितत् वाद्य– जोर तार वाद्य गज या कमानी से बजाए जाते हैं, जैसे– चिकारा, चिकारी, सारंगी, बाना, रेंकड़ी आदि उन्हें वितत् वाद्य कहते हैं।

सुषिर वाद्य– फूँक से, धोंकनी से बजाए जाने वाले वाद्य जैसे– वंशी, मुरली, मोहरी, शहनाई, अलगोझा, बीन, हारमोनियम इत्यादि को सुषिर वाद्य कहा जाता है।

अवनद्ध वाद्य– वे ताल वाद्य जिन पर खाल–मढ़ी रहती है, जैसे– ढोल, ढोलक, मृदंग, माँदर इत्यादि वाद्यों को अवनद्ध वाद्य कहा जाता है।

घन वाद्य– जिन वाद्यों को आपस में टकराकर ध्वनि उत्पन्न की जाती है– जैसे करताल, झाँढ, मंजीरा, चिमटा, इत्यादि को घन वाद्य कहते हैं। सभी प्रकार के वाद्यों के लिए जायसी ने कहा है–

तत् वितत् सिखर घन तारा। पाँचों सबद होई झनकारा।।

तन्तृ वाद्य– तम्बूरा, चिकारा, चिकारी, बाना, तुनतुना, रेंकड़ी, रावणहत्था, किन्दरी, किनरी, एकतारा, सारंगी, तोनक्या, किकिर, चैतारा, जगतारा, जन्तर, कामापचा, रवाज, सरिन्दा।

अवनद्ध वाद्य– ढोल, ढोलक, माँदल, माँदर, टिमकी, मृदंग, ढाँक, डमरू, ढफली, ढफ, नगाड़ा, नगड़िया, कुण्डी, सींग बाजा, गुदुमबाजा, दुऊ, गड़बा–बाजा, माँदरी, डोल, कुण्डीर, पेन डोल, ढोलकी, दमामा, हुडुक, घेरा।

सुषिर वाद्य– मोहरी, सेनाई, शहनाई, वंशी, मुरली, बाँसुरी, पावी, फेफर्या, आलगोझा, रमतुला, टुटाड़ी, भुगडू, तोड़ी, बीन, सिंगी, पावी (पवई), केन्दरिया, सतारा, नढ़, सुरनई, मुरला, पावरी, रणसिंहा, तुरही, तुरी।

घन वाद्य– झाँझ, मंजीरा, झींका, चिमटा, झेला, घुँघरू, थाली, खरताल, ठिसकी, चुटकी, चिटकुला, खंजरी, ठजीर (लौहछड़), घंट, कड़ा, घुँघरू, झाल।

ok| mRifÙk dFkk,&

लोक वाद्यों की उत्पत्ति के संबंध में संगीत–शास्त्रों में और लोक–समाज में कई कथाएँ सुनने को मिलती हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि अवनद्ध (चर्म आच्छादित), सुषिर और तन्तु वाद्यों का जन्म कैसे हुआ।

प्रसिद्ध वीणा– वादक उस्ताद असद अली खाँ ने वाद्यों की उत्पत्ति के संबंध में भगवान शिव की एक कथा का उल्लेख किया है। कथा के अनुसार भगवान शिव ने तीन वाद्यों का सृजन किया। ये तीन वाद्य हैं– वीणा, वेणु और डमरू। तारों से झंकृत होकर बजने वाले सभी वाद्य वीणा से उत्पन्न माने जाते हैं, जैसे सिमार,

इकतारा, सरोद आदि। दूसरा है वेणु यानी हवा से बजने वाले वाद्य जैसे– बीन, शहनाई आदि। तीसरा वाद्य शिव ने डमरू बनाया। इसमें वे सभी वाद्य आते हैं, जो हाथ से बजाये जाते हैं। इसमें ढोलक, मृदंग वाद्य आते हैं।

मध्यप्रदेश की गोण्ड जनजाति में भी यही कथा कुछ प्रकारान्तर से इस प्रकार है– गोण्ड जनजाति की कथा के अनुसार आराध्य 'बड़ा देव' जो शिव का ही एक स्वरूप है– ने गोण्डों उनके जीवन–यापन और मनोरंजन के लिए तीन वाद्य प्रदान किए। उनमें तन्तु वाद्य बाना, फूँककर बजाए जाने वाला वाद्य मोहरी और हाथ की थाप से बजाये जाने वाला वाद्य माँदर मुख्य है।

<ky % mRifÙr dFkk&

प्राचीन संगीत–शास्त्रों में पखावज, मृदंग ढोल, ढोलक, माँदर आदि वाद्यों के लिए पणव, दर्दुर वाद्य नाम प्रचलित रहे हैं। इन चर्म–आच्छादित वाद्यों को पुष्कर कहा गया है। भरत के नाट्य–शास्त्र में वाद्यों संबंधो आदि ग्रन्थ के रचनाकार के रूप में नारद और स्वाति नामक ऋषियों का उल्लेख है। कहा जाता है कि एक बार स्वापि पानी लेने के लिए एक सरोवर पर गए। संयोग से उसी समय वर्षो प्रारंभ हो गयी। सरोवर में कई कमल–फूल खिले हुए थे। वर्षो की बूँदें पहले धीरे–धीरे और फिर तेजी से जब कमल पुष्पों की छोटी–बड़ी पंखुड़ियों पर गिरने लगी तो उनसे विभिन्न प्रकार के शब्द उत्पन्न होने लगे। स्वाति जो कि संगीतज्ञ थे,

उन्होंने इन ध्वनियों को बड़े ध्यान से सुना। उन्होंने सोचा कि क्या ही अच्छा हो, यदि कोई ऐसा वाद्य बनायश जा सके, जिससे कि इस प्रकार के शब्दों को इच्छानुसार उत्पन्न किया जा सके और संगीत में उनका यथोचित प्रयोग किया जा सके। वे विश्वकर्मा के निकट गए और उनको संपूर्ण वृतान्त बताया। विश्वकर्मा ने इससे प्रेरित होकर एक वाद्य–यंत्र का निर्माण किया और इस वाद्य को 'पुष्कर' कहा गया। कालान्तर में इसी आधार पर पणव, दर्दुर, पटह, मृदंग, ढोल और अनेक अवनद्ध वाद्यों का निर्माण हुआ।

ukn ls /kjrh dk t xkuk %&

जनजातीय समाज अपने जातीय देवी–देवताओं की कृपा पाने, प्रसन्न करने के लिए रात–रात भर नृत्य, गायन और वादन से उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। आदिवासी समाज में संगीत–नाद का कितना महत्व है, यह भील जनजाति के इस मिथक से समझा जासकता है। मिथकथा के अनुसार–बीलू बाई ने धरती, चाँद–सूरज, सारे जीव–जन्तु और मनुष्य बनाये। धरती हरी–भरी हो गयी, फिर भी सूनापन था। महादेव समझ गए कि वह बिनाढोल–माँदल की थाप के नहीं जागेगी। नाद था तो धरतर पर ही, अतः वे शालापुरी में रहने वाले सावला सुतार (बढ़ई) के पास गए और उसे बाजा गढ़ने का काम सैांप दिया। सावला सुतार पूरी तैयारी से जंगल पहुँचा। वहाँ सागौन के जिस–जिस पेड़ की शाखाएँ स्वर्ग में डोल रही थीं, उसने महादेव द्वारा सौंपे गये काम का वर्णन कर, उससे इजाजत माँगी और तब उसे काटकर

उत्तर–दक्षिण दिशा में गिराया। फिर सबसे ऊँची फुनगी पर पगड़ी बाँधकर,उसने पेड़ के नाद को बाहर निकलने से रोका। सावला सुतार ने फिर उसके तने से ढोल, माँदल, ढोलकी, सणिया बाजा, कुण्डी, और ढाँक नामक वाद्य गढ़े। सबसे ऊपर की पतली डाल से अनाज मापने के पात्र गढ़े और सागौन की टेढ़ी –मेढ़ी जड़ से वाक्ड़या बाजा (तुरही) बनाया। उसने इन सारे वाद्यों को महादेव को सौंप दिया। महादेव ने इन वाद्यों को अलग–अलग जाति के लोगों को बाँट दिये। धीरे–धीरे पृथ्वी के सुदूर अंचलों से वाद्य की थाप और ताल पर लोगों के नृत्य–गायन की आवाज आने लगी, तब महादेव बोले– अब मेरी बहिन धरती जाग रही है।

ckuk mRifÙk dFkk %&

बाना, गोण्ड जनजाति का आदिम तन्तु वाद्य है। गोण्ड मिथक के अनुसार गोण्डों के देवता बड़ा–देव किसी बात से रूष्ट होकर साजा–पेड़ में अन्तर्ध्यान हो गए। तब गोण्डों के सबसे छोटे भाई परधान गोण्ड ने बाना बजाकर बड़ा–देव को प्रसन्न किया। असलिए आज भी परधान गोण्ड गाँव–गाँव जाकर राजा–महाराजाओं की कथा–गाथा का गायन करते हैं। इसी प्रकार मृत्यु के बाद दसगात्र संस्कार के अवसर पर बना वाद्य की संगत से गीत गाकर मृतक की आत्मा की शान्ति के लिए बड़ा–देख से प्रार्थना करते हैं।

कथा के अनुसार बड़ा–देव ने गोण्ड राजा को स्वप्न में विधि –विधान से बाना वाद्य बनाने का आदेश दिया। राजा ने स्वप्न की बात अपने छोटे भाई परधान को बतायी। तब छोटे भाई ने साजा वृक्ष की लकड़ी से बाना बनाया और उसे बजाने के लिए धनुषाकार हथोरी भी बनायी। छोटा भाई साजा वृक्ष के नीचे ध्यान मग्न बैठा था, तभी आकाा में उड़ती हुयी भरही चिड़िया ने गाना शुरू किया। परधान ने भरही चिड़िया के स्वर में स्वर मिलाकर हथोरी घुमारा शुरू की, तो 'बाना' से सुर निकलने लगे। बाना का मधुरमय संगीत सुनकर बड़ा–देख प्रसन्न होकर, साजा वृक्ष से प्रकट हुए और गोण्डों को सदा खुशहाल रहने का वरदान दिया।

बाना वाद्य की उत्पत्ति के संबंध में एक–दुसरी कथा के अनुसार लिंगो गोण्डों का सबसे छोटा भाई था, लेकिन वह पृथ्वी पर गोण्डों का उद्धार और प्रतिष्ठित करने वाला महानायक होने के कारण गोण्ड, लिंगो को देचता के रूप में पूजने लगे थे। लिंगो ने उन्हें वाद्य दिए, संगीत दिया और उन्हें संस्कृति संपन्न बनाया। गोण्डों की नजर में वह महादेवता है।

एक बार लिंगो कहीं जा रहा था, रास्तें में लौकी मिली, वह सड़ी हुयी थी, इसलिए लिंगो ने उसे पानी में बहा दिया। लौकी बहते–बहते किसी किनारे पर लग गयी। उसके बीच छितरा गए और उपयुक्त अवसर पाकर वे उग आये। लौकी की बेल फैली, उसमें बहुत लौकियाँ फैली। लिंगो ने उसमें से एक अच्छी लौकी का बाजा बनाया। अपने बालों के तार लगाए और खिरसारी वृक्ष की लकड़ी की कमान बनायी। उसने उसे बजाया तो मधुर स्वर निकला। उसने उसका नाम 'बाना' रखा।

ck¡lqjh dh tUe dFkk %&

बहुत पुराने समय की बात है। एक दिन जंगलों की पन देवी के मन में जंगल के बड़े–बड़े पेड़ों की नेक नीयत और सहायता भावना की परीक्षा लेने की बात आयी। मन में यही विचार करके वह चल पड़ी। चलते–चलते वह मधुपुरी के पास बहुलावन में पहुँची। वन बहुत ही सुन्दर था। बहुत सारे ऊँचे–ऊँचे वृक्ष, दूर तक फैली हरियाली और बहुत ही मीठे पानी का एक सुन्दर सा तालाब था। वन में तरह–तरह के पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़े बड़े आराम से रहते। फल–फूल खाकर, तालाब का पानी पीकर अपना जीवन–यापन करते थे।

वन देवी के परीक्षा लेने के इरादे से बहुलावन के लिए बुरा वक्त आया। एक दिन वहाँ बहुत तेज आँधी आई और मूसलाधार वर्षा हुयीख जिससे बहुत से पेड़ उखड़ गए। पक्षियों के घोंसले भी नष्ट हो गए। पेड़ो की खोह में, पशुओं की माँदो की माँदों में, कीड़े–मकोड़ों के बिलों में पानी भर गया। वे पनाह लेने के लिए इधर–उधर भटकने लगे। अंधेरा होने लगा था।

वन देवी ने पेड़ो की नेक नीयती और सहायता भावना की परीक्षा लेने के लिए तनों में छेद करने वाली एक छोटे कीड़े का रूप धारण किया और हवा के झोंको में झूमते हुए नीम के पेड़ के पास पहुँचकर बोली– हे नील काका। नी काका। मेरे पूरे घर में पानी ही पानी भर गया है। क्रूा आज की रात मैं आपके मोटे तने में छेद करके, उसमें घुसकर रात काट लूँ। वर्षा में नहाया नीम

अपने में ही मगल था, उसने जैसे कीड़े की बात सुनी ही नहीं। कीड़े ने एक बार फिर कहा– और वो उत्तर की आशा में खड़ा रहा। नीम से कोई जवाब न मिलने पर वह कटहल के पेड़ के पास गया। कीड़े की बात सुनकर कटहल ने भी आश्रय देने से मना कर दिया।

वन में चलते–चलते कीड़ा आम के पेड़ के पास पहुँचा और आम से बोला– आम मामा। आम मामा। देखो तो कैसी वर्षा आँधी आयी कि मेरे बिल में पानी भर गया है। क्या आप इतनी कृपा करेंगे कि मैं आपके तने में छेद करके आज की रात रह लूँ? आम ने भी बेरूखी से कीड़े को फटकार दिया और कहा कि मेरे यहाँ कोयल रानी तुझे खा जायेगी, जा यहाँ से चला जा। कीड़ा वहाँ से जल्दी आगे बढ़ गया। काफी दूर जाने पर उसे एक तरफ झुरमुट में खेड़े केले के पेड़ दिखे। कीड़े ने केले करे अपनी विपत्ति बतायी और शरण माँगी। पर केला तो मुँह से बोला तक नहीं। उसने अपने लम्बे–चौड़े पत्ते जोर से हिला की आश्रय देने से साफ मना कर दिया।

सारे बड़े, अच्छे पेडों की दुत्कार और रूखे व्यवहार से बेचारा कीड़ा बहुत निराश और दुःखी हो गया। वह बड़े सोच में पड़ गया कि अब कहाँ जाऊँ, किसके पास जाऊँ? इसी सोच में चलता–चलता वह तालाब के पास आ पहुँचा। तालाब के एक ओर बाँस खड़े थे।

कीड़ा सोचने लगा कि– बाँच में तो गांठे होती हैं, काँटे होते हैं और पत्तियाँ भी नुकीली होती हैं। फिर भी उसने बड़ी ना–उम्मीदी से बाँस से तने में रहने की बात कहीं। आशा के विपरीत बाँस आश्रय देने को राजी हो गया। बाँस की सहमति से कीड़े ने तने में छेद कर उसमें घुस गया, पर उसे कुछ असुविधा सी लगी। उसने बांस से पूछा– भैय्या, इसमें मेरा दम घुट रहा है, क्या मैं तुम्हारें तने में कुछ और कर लूँ। बाँस द्वारा अनुमति मिलने पर कीड़े ने एक–एक कर छः छेद किए फिर आराम से खोल में सो गया।

रात बीती सुबह हुयी। यहायक जंगल के वृक्षों ने बाँस के झुरमुट पर अनोखा प्रकाश देखा। उन्होंने देखा कि बाँस के पेड़ से एक ज्योतिर्मयी देवी निकल रही है, जिनके मुकुट पर एक छोटा सा कीड़ा चिपका है। सबने पहचाना– अरे। यह तो वही कल वाला कीड़ा है, जो हमसे आश्रय मांगने आया था।

वन देवी बोली– वृक्षों! मैं वन देवी हूँ। कल मैंने कीड़े के रूप में सारे वृक्षों की परीखा ली कि वक्त जरूरतमंद की मदद कौन करता ळै। दुर्बल को सहारा कौन देता है। मैंने सारे बड़े पेड़ों को परख लिया। जो वृक्ष अपने स्वार्थ में मग्न और घमण्डी हैं, आज मैं उन्हें श्राप देती हूँ– नीम का पेड़ ऊपर से नीचे तक कड़वा हो जाएगा। कटहल के फलों पर काँटे उग आएँगे। सुन्दर आम का मुँह काला हो जायेगा। उसका तना उतना ही खुरदुरा और पत्तियाँ कसैली हो जाएँगी। केला केवल एक बार फल दे सकेगा। बार–बार फल देने के लिए उसे बार–बार काटना पड़ेगा। इतना कहकर वन देवी चुप हो गयी।

सारे पेड़ प्रतीक्षा करने लगे कि देखें, बाँस के लिए वनदेवी क्या कहती हैं। कुछ क्षण बाद वन देवी बोली– और यह बांस, इसमें न फूल आते हैं न फल, न तो इसकी घनी छाया ही है। मैंने ही इसे काँटे और गाँठे दी हैं, पर यह कितना नम्र और दयालु है कि इसने एक बेहाल जरूरत मन्द कीड़े को आश्रय दिया, अपने शरीर में एक नही छह–छह छेद कर लेने दिए। आज मैं बांस को वरदान देती हूँ कि आज के दिन से बाँस में जो भी कोई छेद करके फूँकेगा, उससे बहुत ही मीठी सुरीली आवाज का बाजा बजेगा, उसका नाम होगा– बाँसुरी।

संयोग ऐसा हुआ कि उसी समय कृष्ण आगे गोप–ग्वालों के साथ गाय चराने को पहुँचे। वनदेवी ने बाँस से काट कर वह छेदों वाला टुकड़ा, वह बाँसुरी कृष्ण को दे दी। कृष्ण ने वन देवी द्वारा दिये बाँस के टुकड़े को अपने ओठों से लगा फूँककर बजाया तो सारा विश्व बाँसुरी की मीठी आवाज से गूँज उठा।

छत्तीसगढ के करमा लोकनृत्य के माध्यम से मैं समस्त आयामों को जैसे– इसकें काव्यपक्ष, संगीत, वाद्यों, वेशभूषा, दन्त कथाएं, साज श्रृंगार का अपनी गुरूजनों एवं लोककलाकारों तथा जहां से मुझे ज्ञान मिला, उन सबका अपनी मती अनुसार अध्ययन किया है।

v/;k; & 4

^^ykd uR; d ykd dykdkjk dk lk{kkRdkj ,o ej nk o"k d vuHko ,o ykd uR; e ejh fopkj fpru dk jpukRed v/;;u

Jherh iue frokjh ¼ifl) uR;kxuk½

श्रीमती पुनम तिवारी (छत्तीसगढ़ शासन द्वारा दाऊ मंदराजी सम्मान प्राप्त) बाल्य काल से लोकनृत्यों में पारंगत थी घर में ही कलाकारी माहौल भी पुनम के माता–पिता जो देवर कबीलों के थे उनकी माता करमा गीत नृत्य महान गायिका एवं नृत्यागंना थी। ''राधाबाई मरकाम'' छत्तीसगढ़ के प्रमुख नाचा मंडलियों में अपने नृत्यों की प्रस्तुति देती रही है और अपने भरणपोषण करते हेतु पुनम तिवारी अपनी मॉ के साथ प्रोग्राम जाती और रात रात भर कार्यक्रम देखती और दूसरे दिन वह उन्हीं कार्यक्रम का नकल कर–करके अपने डेरा में लोगों का मन आकृर्षित करती है। अपने बाल्य काल कि

खेतबूद को नृत्य और गीत में व्यतीत करती थी। बाल्य काल में विवाह हो गयी और पति कलाकार था श्री रामशंकर रिषी जो प्रसिद्ध क्लारनेट वादक है उन्होंने पद्मभूषण हबीब तनवीर के ग्रुप नया थियेटर में बतौर नृत्यागंना, गायिका एवं अभिनेत्री के रूप साथ शामिल हुई और हबीब तनवीर कई प्रमुख नाटकों में अपनी कला कौशल प्रदर्शन किये। जिसमें प्रमुख नाटक है, चरनदास चोर, आगरा बाजार, मिट्टी की गाड़ी, बहादुर कलारिन, देख रहे है नैन, लाहोर, हिरना की अमर कहानी, आदि। आप वर्षो तक नया थियेटर के साथ रहे और राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कई सांस्कृतिक कार्यक्रमों में शामिल हुए वे विदेश यात्रा, फ्रांस, जर्मनी, लंदन सभी और अपने प्रसिद्ध नाटक चरनदास चोर जो एडिनवरा में प्रथम पुरूस्कार से प्राप्त नाटक के सहयोगी रही है और इन्ही योगदान पर शासन द्वारा दाऊ मंदरानी सम्मान 2015 से आपको आपके कला सांधना को छत्तीसगढ़ शासन द्वारा सम्मानित किये गये है। पुनम जी अपनी विचार लोक के प्रति इस तरह रखते है–

साधारण वर्ग जो लोक नृत्यों के मर्म को नहीं जानता। नृत्य नहीं करता, उनकी पहचान से दूर है। वह लोक नृत्यों की कलात्मकता में रुचि रखता है। उसमें लोक नृत्यों के अवलोकन के प्रति उत्सुक्ता होती है । वह जानना चाहता है कि वह कौन से तथ्य हैं जो लोक नृत्यों को कलात्मक बनाते है। वास्तव में लोक नृत्यों क्रो प्राकृतिक सादगीपूर्ण सज्जा ही उनकी आत्मा है। कठिन एव बनावटी मुद्राओं से मुक्त इन लोक नृत्यों में उन्मुक्ता उल्लास

और भाव भगिमाए व्याप्त होती हैँ। लोक नृत्यों में गूढ नियमों का कोईं बन्धन नही है। जो भी नियम होते हैं, वे सीधे–सरल और जन–जन की समझ के योग्य होते हैं। सीधा और व्यापक प्रभाव लोकनृत्यों को वह विशेषता है, जो उन्हे विकसित बनावटी एवं परिमार्जित शास्त्रीय नृत्यों से पृथक करती है। सरल शैलियाँ एवं सुदंर स्वरूप ही लोक नृत्यों का सशक्त रूप प्रकट करते है। कुर्ट साक्स की यह परिकल्पना लोकनृत्यों के गुणों को स्पष्ट करती है नृत्य के रस में आत्म–विस्तृत होकर मनुष्य तन–मन का भेद भूल जाता है । सभ्यता ने भाव और व्यवहार पर जो बंधन लगा दिए है, वे नृत्य के उद्दाम वेग में बह जाते हैं नृत्य की लय में खेल नाटक पूजा उपासना एव युद्ध सब एकाकार हो जाते हैं तथा व्यक्ति अपना आपा खोकर समाज ओर समष्टि में तल्लीन हो जाता है। लोक–नृत्य की कलात्मकता का यह अनुपम उदाहरण है ।

लोकनृत्यों की कलात्मकता अनूठी है। सबसे आकर्षक तो नर्तकों के टोली बनाने का ढंग है, जिसकी छटा नृत्य के गतिमान होने पर ही बनती है। लोक नृत्य में सर्वाधिक प्रचलित रचना गोल घेरा, अर्ध घेरा, पंक्तिबद्धता और पिरामिड निर्माण आदि है । असम के बीहू लोक नृत्य में घेरा, सीमित रहता है, जबकि गुजरात के गरबा नृत्य में घेरा स्वच्छन्द होंता है। उडीसा के शबर लोग अपने लोक नृत्य मे जो एकत्रित पंक्ति बनाते है, उसमें जुलूस का आभास होंता है। अनेक भारतीय लोक नृत्यों में जो एक या अधिक सुदंर पक्ति बनाई जाती है। उसमें बारात किसी देवता की रथ यात्रा की

अगुवानी या रक्षक दल का परिदृश्य दिखाई देता है।मध्यप्रदेश के वेगा एव उत्तर पूर्व क नागाओं के लोक नृत्यों में इसका चित्रण उल्लंखनीय है। लोक नृत्यों में स्त्री–पुरूषो के जोड़ी बनाकर खडे होने का ढ़ग ही चित्ताकर्षक होता है। भारतीय लोवनृत्यों में प्रायः यह प्रचलन साधारण रूप में पाया जाता है कि पुरुष और स्त्रियाँ अलग–अलग पंक्तियों में खडे हाते है किन्तु नृत्य करते–करते नृत्य रचना को अधिक कलात्मक बनाने के लिए दो पुरुषो के बीच मे एक स्त्री या दो स्त्रियो के बीच में एक पुरुष स्थित होकर नृत्य करते है। यह सब पांरम्परिक ढ़ग से बिना किसी राग–द्वष के सम्पन्न होता है। नर्तक युवक–युवतियों द्वारा एक–दूसरे की कमर में हाथ रखना, कंधो पर हाथ रखना, हाथों को आगे या पीछे पकड़ कर सांकलनुमा अृकति बनाना गोल या अर्ध गोलाकृति बनाना सिरों को एकदूसरे से मिलाना नृत्य करते करते आपस मे एकदूसरे की टांग फसाना एवं कन्धों पर चढ़ना आदि लोक नृत्यों के कलापक्ष का सबल पहलू । जैतिया पहाड़ी के लोक नृत्यों में टोली रचना और हाथ पकड़ने के ढग जटिल होते है, जबकि संथालों के नृत्यों में सीधे और सरल होते हैं। उराँव लोगो के कदम उनके नृत्यों में ऐसे संचालित होते है या पड़ते हैं, मानो कोई कांतर अपने सो पैरो से सरक रही हो। बाइसन हार्न माडिया के नृत्यो चीटों की कतार के दर्षन होते है। ''आओ जाति'' के नागा पहले एक कदम दाहिने चलते हैं, फिर एक कदम पीछे रखते है और फिर झटके से घुटना मोड़कर दाहिने पांव को दो बार जमीन की ओर पटकने की

कलात्मक क्रिया करते है। मछुवारों के नृत्यों में समुद्र की गतिविधियों का सुंदर सामाजस्य देखने को मिलता है। हिमाचल प्रदेष के लोकनृत्यों में मनोहारी कलात्मकता के साथ हाथ बांधकर प्रारंभ।

ifl) eknj oknd ,o ykd urd Jh ipHkb;k nokj viu fopkj ykd uR; d ifr bl rjg O;Dr fd; g

प्रायः सभी लोक नृत्य समूह में नाचे जाते हैं। लोक नृत्य स्त्रियों द्वारा भी नाचे जाते हैं और पुरुषों द्वारा भी। आदिवासी लोक नृत्यों में प्रायः स्त्री—पुरूष सम्मिलित नृत्य करते हैं। लोक नृत्यों के लिए रंगमंच की आवश्यक्ता नहीं होती है। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में, खुले मैदान में, गांव की गली खोरी में, भी नाचे जाते हैं। लोक नृत्य स्वच्छन्द है। बन्धनों से मुक्त हैं। किसी प्रकार के नियम बंधन में इनकी मौलिकता क्षतिग्रस्त होती है।

लोक नृत्य के नर्तकों को अलग से किसी विशेष प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता बहुत ही कम पडती है । उनकी अपनी निर्धारित वेशभूषा और साज–सज्जा होती है। जिसका लोक नृत्यों के लिए सर्वाधिक महत्व है। इसी से लोक नृत्यों की पहचान होती है। इसके बावजूद नृत्य के लिए वेशभूषा, साज–सज्जा का उपयोग जरूरी होता है. अन्यथा रोजमर्रा के लिए सामान्य वस्त्रादि पर्याप्त है। गोड़, भील, बैगा, माडिया, उरांव, परजा आदि उन जन–जातियों की वेशभूषा अत्यन्त चित्ताकर्षक होती है।

लोक–नृत्यों में समय का कोई बन्धन नहीं है। नृत्य कब आरंभ किया जाए। कब समाप्त किया जाये इसका कोई नियम नहीं है। एक ही नृत्य घटों तक चल सकता है और पांच मिनट में भी समाप्त किया जा सकता है। इसी तरह मौसम का भी प्राय कोई विचार नही किया जाता है। चाहे काई भी मौसम हो लोक नृत्य जम जाता है। लोक नृत्यों की सबसे बडी विषेषता ये है कि इसमें सभी नर्तक होते है और सभी दर्शक किसी को दिखाने के लिए अथवा रिझाने के लिए लोक नृत्य नही किये जाते हैं। ये तो मन की उमंग निकालने के लिए प्रदर्षित होते है। जिसके मन में जब उमंग उठी, नर्तकों में मिलकर नाचने लगा और जब थक गया तो बैठका देखने लगा। लोक नृत्य प्रदर्शनकारी दरबारी प्रवृत्ति से मुक्त हैं। यही कारण है किं लोक नृत्यों में कोई घराना परम्परा नहीं है।

लोकृ नृत्यों की गति और रचना सादी सरल और स्वाभाविक होती है। ताले सरल होती हैं जिन्हें सीखने में कठिनाई नहीं होती।

लोक नर्तक के शरीर में कमनीय लोच रहती है। जैसे कि हवा के झोंकों से झूलती हुईं वृक्षों वी नरम–नरम टहनियों में। जब स्त्री–पुरूषों का पूरा दल नाचता है तो ऐसा लगता है मानो अनाज से लहलहाते खतो पर मे मचलती हुई हवा चल रही हो और उसके झोंकों से फसल लहरा रही हो या चंचल तरगिनी में लहरें उठ रही हों । लोक नृत्यों मे वादक भी नर्तक होता है । लोक नृत्यों को गति और विधा परिपर्वन का नियत्रंण वादक ही करता है । लोक, नृत्यों के वाद्य बहुत ही सादे सरल होते हैं । लोक नृत्यों के वाद्यो की संख्या निर्धारित नहीं होतीं हैं, एक वाद्य से भी लोक नृत्य सम्पन्न हो सकता हैं और एक दर्जन वाद्य भी उपयोग में लाए जा सकते है। एक ही प्रकार के अनेक वाद्य बजाए जा सकते हैं तथा विभिन्न प्रकार के अलग–अलग वाद्यो की लय–ताल से भी लोकं नृत्य होता है। नृत्य के समय वादकगण स्थिर होकर भी बजा सकते हैं तथा नृत्य करते समय वाद्यों का आपस ये परिवर्तन कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि लोक नर्तक ही वादक भी होते हैं। लोक नृत्यों में प्रयोग होने वाले वाद्य सस्ते मूल्य के होते हैं। .

लोक नृत्यों को सोखने–सिखाने के लिए ग्रामीण परिवेश में किसी गुरू या गण्डा–गण्डौरी की अवश्यकता नहीं होती है। गांव का समाज अपने आप ही नई पीढी को जीवन क्रमानुसार सिखाता रहता है । नाचते हुए दल को देखकर बाल समाज के मन में अपने आप ही इच्छा जागृत होती है । वे नर्त्तको की भोड़ में घुस जाते हैं। गिरतें है, उठते है, किसी की उंगली पकडकर फिर नाचने लगते हैं। वे निरन्तर नाचते जाते हैं और इस तरह वे गांवों व समाज के कुषल नर्तक बन जाते है। ''वषुधैव कुटुम्बकम'' की

भावना ही तो इन नृत्यों की विषेषता है। लोक नृत्यों में शरीरिक श्रम बहुत होता है। यह अपने आप में संपूर्ण योग है। लोक नृत्य में मनोरंजन के साथ व्यायाम भी होता है। लोक नृत्य तो आत्मिक आनंद को उभारने वाला है, इसके द्वारा शरीर का भी स्वाभाविक विकास होता हैं।

लोकगीत, लोक नृत्यों के प्राण है। यद्यपि लोक नृत्यों में नृत्य ही प्रधान होता है, किन्तु बिना लोक गीतों के लोक नृत्य अधूरा है। ये गीत संबंधित लोकांचल की बोली में होते है। लोक नृत्य के अपने निर्धारित लोक गीत होते है। बल्कि नृत्य में सम्मिलित सभी लोक–नर्तक स्वयं सामूहिक रूप से नृत्य की लय और ताल के तारतम्य में गाते है।

Jherh ';kek ckbl ukx ifl) djek ykd ujrdh

ykd uR;k dh ykp e idfr dh dkeyrk

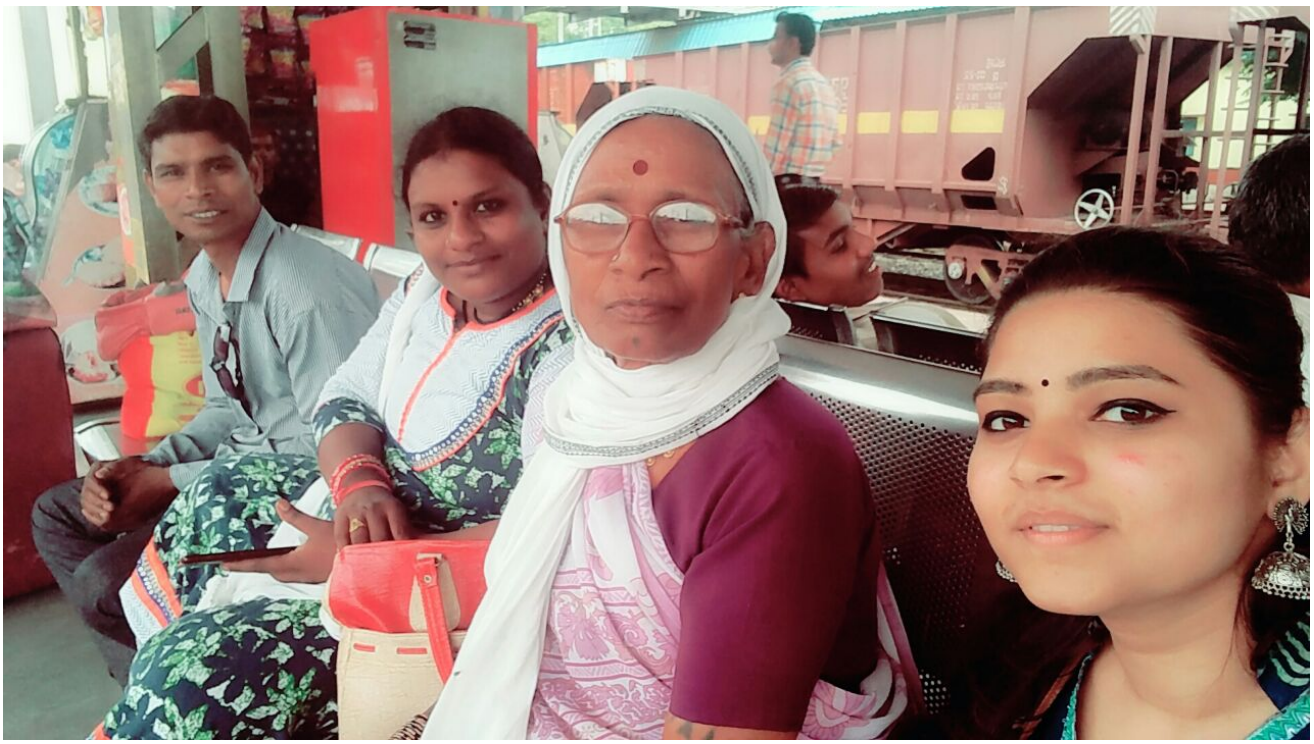

भारतीय लोक नृत्यों में हाथों के द्वारा भावों का प्रदर्षन नहीं किया जाता, वरन् हाथों की जो भी क्रियाएँ होती है, वे नृत्य की आवष्यकता के अनुरूप ही है। लोक नर्तकों के शरीर की लोच तथा पैरों की भिन्न–भिन्न गतियाँनृत्य की प्राकृतिक छटा प्रकट करती है। इसी मे प्रकृति वैचित्र्य का कोमल चित्रण रहता है। हवा के झोंको से जंगल में लगी हुई घास तथा खेतों में लहराती हुई फसल नीचे की ओर झुकती और ऊपर को उठती हुई मीलों लम्बे चौड़े मैदानों में हजारों लहरें पैदा करती है। जंगल में लगे हुए बांसों व पेड़ पौधों की कोमल फुनगियाँ हवा के झोंको से वायुमंडल एवं धरातल की संयुक्त क्रिया से लहराती रहती है। प्रकृति का यही लालित्य लोक नृत्यों की लोच–लचक में चित्रित होता है। भारतीय लोक नर्तकों के शरीर की लोच जो उनके कमर के ऊपरी भाग में लेकर नृत्य के समय आती है, प्रकृति की कोमलता का प्रदर्षन है।

भारतीय लोक नृत्यों के गतियों में बहुत अंषो में जन–मानस के दैनिक कार्यो का समावेष रहता है। इनक कार्यो का चित्रण लोक नर्तक नृत्य करते समय पद–संचालक में करते है, यथा पर्वतों पर वढ़ना, उतरना, फसल से संबंधित विभिन्न क्रिया–कलाप, मछली उलीचना, षिकार करना, कूद–फांद करना आदि। इन दैनिक कार्यो को उसी का मूर्तरूप लोकनृत्यों मे परिलक्षित होता है। इसके सिवाय वन के खग–मृगों के साहचर्य में जो ग्राम्य जीवन बीतता है, उनकी चाल तथा केलि–क्रीड़ा की गति का भी लोक नृत्य पर प्रभाव होता है। लोक नृत्यों में लोक वाद्यों की ताल, पैरों की गति

के तारतम्य से मिलती–चलती है, जो कभी तीव्र तो कभीमन्द होकर लोक नृत्यों की लोच मे प्राकृतिक दृष्य उत्पन्न करती है।

लोक नृत्य ग्राम्य एवं आदिवासी जीवन का प्रमुख अंग है। आदिकाल से उत्तुंग गिरि–षिखरों तथा गहन वन उपत्यकाओं में निवास करते रहने और कृषि पर निर्भर रहने के कारण इनके स्वभाव में परस्पर सहयोग का गुण इस प्रकार घुल–मिल गया है ि कवह भारतीय लोक नृत्यों में भी स्पष्ट दिखाई देता है। इनके दैनिक कार्यो मे प्रातः से संध्या तक परस्पर सहयोग एवं संस्कार के ही दर्षन होते है। बाजार जाना, जंगल जाना, पानी भरना आदि छोटे–छोटे कार्य भी अपने संगी– साथियों के साथ ही किए जाते है। वन के मोर, जलाषय की बत्तखें तथा चिड़ियाँ सदैव समूह में उड़ती, बैठतीं तथा दाने चुगती है। वन में उगी घास, पृथ्वी पर पड़े अनगिनत पत्थर, जंगल में खड़े हुए असंख्य वृक्ष आदि प्रत्येक समय प्रत्येक दषा मेंसहयोग का ही पाठ पढ़ाते है। नागर सभ्यता की चमक–दमक से सैकड़ों कोस दूर आदिकाल से घोर वनों में रहने वाले ग्रामीणों व आदिवासी जनो ने प्रकृति के कण–कण से एकता और सहकार्य का जो पाठ सीखा है और अपने जीवन में जिस प्रकार चरितार्थ यिका है, वह आज के समय संसार के लिए अनुकरणीय है। इनके लोक नृत्यों में इसीलिए सामूहिकता होती है, जो इनकी अपनी देन है।

[kjkx< lxhr fo’ofo|ky; NÙkhlx< e ik- Jh leju /ko

ykd uR; d ifr mud fopkj

लोक नृत्यों के प्रकार अपने–अपने ढ़ग से बताए जाते हैं। कोई 176 प्रकार तो कोई 200 प्रकारों की गणना करते है। वास्तव में भारतीय लोकनृत्यों के प्रकार बताना एक कठिन कार्य है। विवाह–त्यौहार. उत्सव–मृत्यु एवं फसल कटाई आदि अक्सरों पर लोकनृत्य होते हैं। प्रकारों का एक वर्गीकरण इसी क्रम में किया जा सकता है । पशु–पक्षियों, हास्य–व्यंग, कलाबाजी आदि के सन्दर्भों में भी लोकनृत्य आयोजित होते हैं. अतः दूसरा वर्गीकरण इस ढ़ंग से किया जाकर प्रकारों का निर्धारण किया जा सकता है। किन्तु इन दोनों ही वर्गीकरणों के अतर्गत आने वाले कतिपय लोक नृत्यों का अन्तसम्बन्ध किसो–न–किसी रूप में दिखाई देता है. जिससे लोकनृत्यों के प्रकारों को स्थपित करना सभंव प्रतीत नहीं होता है। अतः भारतीय लोक नृत्यों को तीन प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है।

1. अनुष्ठानिक लोक नृत्या ।
2. पर्व एवं तीज–त्योहार संबंधी लोकनृत्या।
3. व्यावहारिक लोक नृत्य।

(1½ vu"Bkfud ykd u`R;& जिन लोक नृत्यों के आयोजन में पूजा–पाठ. झाड़–फूक एवं अन्य अनुष्ठानिक क्रियाक्लापों का पालन किया जाता है। उन्हें अनुष्ठानिक लोकनृत्य कहते हैं। जैसे– अरूणाचल का रोप्पी लोकनृत्य, कर्नाटक का पूजा–क्रुणित लोकनृत्य, मिजोरम का चेराव नृत्य, राजस्थान का गौरी लोकनृत्य आदि।

¼2½ iol ,oa rht&R;kgkj lacf/kh yksd uR;& पारम्परिक एव सामाजिक पर्व उत्सव एवं त्यौहारों आदि का सांस्कृतिक परिवेश जिन लोकनृत्यों की पृष्ठभूमि में समाहित होता है वे इस श्रेणी के लोक नृत्य कहलाते हैं।

जैसे– मध्यप्रदेश का परब लोकनृत्य, जम्मू–काश्मीर का फुमनियन लोकनृत्य, पश्चिम बंगाल का मीच नृत्य, उड़ीसा का डालखाई लोक नृत्य आदि।

¼3½ 0;ogkfjd yksduR; & भारत के अनेकानेक ऐसे लोकनृत्य है जो ग्रामीण जनों को सांस्कृतिक एकता के रूप में बाधे रहते है। ऐसे लोकनृत्य गांवो में विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कारिक अवसरो पर आयोजित होते हैं ।

जैसे–बिहार का करमा जादुरा लोकनृत्य, पंजाब का गिद्दा लोकनृत्य, उत्तरप्रदेश का सखिया नृत्य. हरियाणा का धमाल लोकनृत्य आदि।

इसके अतिरिक्त भारतीय लोकनृत्यों को क्षेत्रीय आधार पर भी दो वर्गों में बांटा जा सकता है। प्रथम– पहाडी लोकनृत्य एवं द्वितीय मैदानी लोकनृत्य भारत के प्रत्येक प्रदेश में पहाडी. एव मैदानी इलाके हैं। अत्तः इन इलाकों में निवास करने वाले जन–सामान्य के लोकनृत्यों को पहाडौ एवं मैदानी लोकनृत्य कहा

जा सकता है। एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार भारतीय लोकनृत्यों को निम्नानुसार भेदों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) व्यक्तिगत लोकनृत्य ।

(2) सामूहिक लोकनृत्य।

(3) महिला लोकनृत्य ।

(4) पुरुष लोकनृत्य ।

(5) मिश्रित लोकनृत्य आदि।

¼1½ 0;fäxr yksduR;&

ऐसे लोकनृत्यों को एकल लोकनृत्य भी कह सकते हैं। इन लोकनृत्यों में एक या कभी कभी दो व्यक्ति भाग लेते हैं। इन लोकनृत्यों मे नर्तक घूम–घूम कर आगिक प्रदर्शन करते हुए लोक गीत के लय पर नाचता है। जैसे पश्चिम बगाल का बाऊल नृत्य एवं महाराष्ट्र का लावनी नृत्य आदि।

¼2½ lEefgd yksd uR;&

इन लोक नृत्यों मे लोक नर्तकों का एक समूह भाग लेता है। यह समूह स्त्री. पुरुष या बालकों का होता है। जैसे बिहार का डोल नृत्य एवं मध्यप्रदेश का भोजली परब नृत्य आदि।

¼3½ efgyk yksd uR; &

इन लोकनृत्यों में केवल महिलाएँ भाग लेती हैं । जैसे आंध्र का माथुरी लोकनृत्य, पंजाब का गिद्दा लोक नृत्य, राजस्थान का चरी लोकनृत्य आदि।

¼4½ iq#"k yksduR̀;&

इन लोकनृत्यों में केवल पुरुष वर्ग भाग लेता हैं । जैस गुजरात काुछाडी लोकनृत्य मणीपुर का घूमन पुंग चोलम लोकनृत्य एव पंजाब का भागड़ा लोकनृत्य आदि।

¼5½ fefJr yksduR̀;&

भारत मे ऐसे अनेक लोकनृत्य हैं जिन लोकनृत्यों में स्त्री पुरुष दोनों ही भाग लेते हैं। भारतीय समाज में इन लोकनृत्यों के अपने मूल्य एवं आदर्श हैं जिनका समावेश जन साधारण अपने सामाजिक एव धार्मिक जीवन में करता है। ऐसे लोक नृत्यों मे हिमाचल के नाटी, पगंवाल पांडिचेरी का पिन्नल अट्टम, बिहार का लहसुआ, मध्यप्रदेश का भागेरिया, काकसार आदि के उदाहरण प्रमुख हैं।

ifl) nsokj djek dk xkf;dk ,oa uR̀;kaxuk Jhefr js[kk nsokj

yksduR̀;] yksdxhrksa dk fcuk v/kwjk gS

लोकगीत, भारतीय लोवनृत्यों के अत्यन्त लोकप्रिय एवं महत्त्वपूर्ण अंग हैं। लोकनृत्यों में लोकगीतों का अपना विशेष आकर्षण होता हे। लोकनृत्यों में लोकगीतों का सुन्दर एवं मनभावन समावेश होता है। जो भारतीय लोकनृत्यों में अमूल्य धरोहर के रूप में गांव गांव में विद्यमान है । भारत में प्रचलित लोकनृत्यों के अपने निधार्रित लोकगीत होते हैं। जिनके अभाव में लोकनृत्य अधूरा होता है। परन्तु कुछ लोकनृत्य ऐसे भी हैं। जिनमें लोकगीत गाने कीं प्रथा ही नहीं होती हैं। ऐसे लोक नृत्यों की संख्या बहुत कम है। यथा–नागाओं के लोक नृत्यों मे लोकगीतों के स्थान पर नर्तकगण सामूहिक रूप से एक विशेष प्रकार को ध्वनि उच्चरित करते है, जिससे उनके लोक नृत्य नियत्रित होते हैं। सामान्यत लोकनृत्यों में सम्मूहिक रूप से लोक गीत गाए जाते हैं। भारतीय नृत्यों में बहुआयामी लोक गीतों का प्रचलन है। यथा–मौसमी गीत सरकार

सबधी गीत, आखेट संबंधी गीत, श्रृगांर सहित विभिन्न रसों के गीत श्रमगीत तांत्रिक गीत, क्रोध–ममता, राग–विराग, सुंख–दुख, हर्ष–शोक, ऐतिहासिक राष्टीय सामाजिक सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, उमंग उल्लास. भक्ति भाव, प्राकृतिक सौंदर्य आदि। लोकनृत्यों के साथ गाए जाने वाले कुछ लोकगीतों का आकार सूक्ष्म होता है तो कुछ बडे और लम्बे होते हैं। प्रत्यक्ष अनुभव एवं जानकारी के अनुसार आश्चर्य होता है कि साक्षरता और लिखित लिपि के अभाव में भी सामान्य भारतीय लोक गायकों को सैकडों लोकगीत कंठस्थ होते हैं। लोकनृत्यों में गाए जाने वाले लोकगीत भी लोक–नर्तकों को कंठस्थ होते हैं । इतना ही नहीं प्रतिभा के धनी भारतीय लोकगायक या लोकनर्तक लोकनृत्यों में प्रयुक्त होने वाले लोकगीतों की तात्कालिक रचना करने में पूर्ण कुशल होते है। भारतीय लोक नर्तकों का स्टेमना (दम–खम) सराहनीय होता हैं। नृत्य और गीत साथ–साथ घटों चलते हैं. किन्तु उनकी मानसिक एवं शारीरिक स्थिति में थोडी थकान भी नही आती है। ये निरन्तर एक साधक की भांति लोकनृत्य करने में घटों लीन रहते हैं।

Mk- jkt dqekj iVsy ih-,p-Mh- djek ykd uR;

Hkkjrh; ykduR;ksa esa O;kIr fØ;k,a] eqnzk,a ,oa

Hkko&Hkafxek,a

भारतीय लोक नृत्यों में शैलीगत आंगिक क्रियायें होती है, जिस्का सचांलन लोक नर्तकों के अंग–प्रत्यंग में समाहित होकर कुशलता–पूर्वक सम्पन्न होता है। लोक नर्तकों द्वारा सम्पन्न होने वाली लोक नृत्य कीं क्रियाओं और मुद्राओं का आधार रेखागणितीय रचनाशीलता है। भारत के समस्त लोक नृत्य गोलाकार, अर्ध गोलाकार त्रिकोणीय, चतुष्कोणीय, सरल रेखीय, वक्ररेरबीय, अंडाकार एवं सर्पाकार आदि सरल एवं सौम्य स्थिति में सम्पन्न होते

है। लोक नृत्यों में हाथों की पकड़ में भी विविधता है। हाथो की पकड़ भी परम्पारनुसार संबंधित लोकनृत्यों में निर्धारित होती है, जैसे–हथेली मे हथेली डालकर पकडना,एक दूसरे के कन्धों पर हाथ रखना, सामने या पीछे की ओर हाथों की सांकल बनाना, दोनों हथेलियों को दोनों कन्धों पर रखना, दोनों हथेलियों को बारी–बारी से कंधे पर रखना। हथेलियों की यह स्थिति संबंधित लोक नृत्य के अनुसार होती हैं।

भारतीय लोक नृत्यों में लय,ताल,भाव–भंगिमाएँ मुद्राएं एवं क्रियाएँ लोक नर्तकों के पद एवं अंग संचालन द्वारा संचालित होकर दर्षक या श्रोताओं को रस–प्लावित करती है। नृत्य की बेला में लोक नर्तकों की पूरी देह या पूरा देह–छन्द दर्षकों या श्रोताओं को लोकनृत्य की ओर भावानुकूल निष्छल रूप से आकषित कर आंनद की अथाह गहराइयों तक ले जाने में समर्थ होते है। लोक नर्तकण लोकनृत्यों की विधाओं को कभी–कभी केवल मुद्राएँ प्रदर्षित कर या कभी भाव–भंगिमाएँ प्रस्तुत कर दर्षकों का सम्पूर्ण देह–छन्द में में खो जाने के लिए मजबूर कर देते है। लोक नृत्य के चलते कभी–कभी लोक नर्तकों एवं नर्तकों दर्षकों का आनुभूतिक रिष्ता अटूट रूप से स्थापित हो जाता है, जिसका माध्यम लोकनृत्यों की गति, लोकनृत्यों में प्रकृति–दर्षन एवं लोकनृत्यों की बेजोड़ प्रस्तुति आदि होता है । इस तरह लोक नृत्य दर्षन में आनुभूतिक रिष्तों के साथ जुड़े लोक नर्तको के भाव–सौंदर्य और देह–सौदार्य का क्षणिक किन्तु व्यापक विस्तार होता है और यह विस्तार लोकनृत्य

को अधिक स्वादिष्ट बनाता है जिसका रसास्वादन दर्षकों को प्राप्त होता है।लोक नृत्यों की मुद्राओं, भाव–भंगिमाओं एवं क्रियाओं के द्वारा लोक नर्तकों को अपनी कलजा प्रस्तुत करने का सामयिक एवं उपयुक्त अवसर प्राप्त होता है। इसी प्रकार लोक नर्तक अपनी दे हके अलग–अलग हिस्सों के रसपूर्ण भावों की सूक्षमता एवं सघनता एवं सघनता अभिव्यक्त करते है। दर्षक या श्रोताओं को भी अपनी बारीक समझ एवं पैनी नजर से लोक नर्तकों की मुद्रओं, हस्तमुद्रओं, पद–संचालन, भाव–भंगिमाओं एवं आंगिक क्रियाओं को अपने दृष्टिकोण से परखने का अवसर मिलता है। यही सौन्दर्यबोध और क्षणिक आनुभूतिक रिष्ता है।

लोकनृत्यों मे दर्षक को प्रसन्न करने की भावना कतई नही होती है। लोक नृत्य दर्शक के आत्मानन्द और लोक नर्तक के आल्हाद के लिए होता है। इसमें इतनी कलात्मकता एवं रंजकता हाती है कि नर्तक और दर्शक समान रूप से आनंदित होते है। इसमें हृदयंगम करने को सहज एवं स्वभाविक प्रवृतियाँ पूर्व से हो स्वयमेव विकसित रहती हैं। साधारण दर्शक जो लोक नर्तकों द्वारा गाए जाने वाले लोकगीतों की भाषा एवं लोकनृत्यों के मर्मो से अनभिज्ञ रहतो हैं, वे भी लोक नृत्यों की भाव–भंगिमाओं मुद्राओं एवं क्रियाओं को देखने व समझने में गहरी दिलचस्पी रखते हैं। यही क्रियाएं मुद्राएँ एवं भाव–भंगिमाएँ लोकनृत्यों को सर्वाधिक आकर्षक, मनोहारी एवं सुंदर बनाती हैं।

भारतीय लोक नृत्यों मे व्याप्त मिश्रित क्रियाएँ, मुद्राएँ एवं भाव–भंगिमाएँ तथा उनका विवरण निम्नानुसार है :–

1. अलट–पलट	2. झुलनी	3. उछाल
4. ताली	5. लचक	6. झूम
7. ठुमक	8. उडान	9. थिरकन
10. झटका	11. लहक	12. मौरचाल
13. लंगड़ी चाल	14. बैठकी	15. ढ़ड़क–चका
16. सर्पीली लहरियाँ	17. तिनकोनियँ	18. अटारी
19. बिलाई मारना	20. कुलाटें	21. चकरी
22. मटक		

अलट–पलट इसका संबंध लोकनर्तक के सम्पूर्ण शरीर से होता है । कभी चेहरा, कभी पैर, और कभी कभी सम्पूर्ण शरीर को नृत्य की लय–ताल के साथ कभी अर्ध तो कभी पूर्ण अलट–पलट होती है। यह एक विचित्र क्रिया होती है, जिसमें लोक नर्तक जमीन छोडकर. हवा मे उछलते हुए पलटनी लगाता है। किन्तु नृत्य की लयताल में किंचित मात्र भी अंतर या बाधा नहीं आती है।

झुलनी झुलनी से तात्पर्य झूला की झूल है। एकल या समूह नृत्य में जब पैरों को लय–ताल में झुलाकर लोक नर्तक संचालित करते है तो इस क्रिया को ''झुलनी'' कहते है। इस क्रिया में नर्तक का सम्पूर्ण शरीर या

कभी–कभी केवल हाथ–पैर झूले को तरह झूलते हैं, जो नृत्य विशेष पर आधारित होता है।

उछाल

भारत में ऐसे कुछ लोक नृत्य हैं, जिनमें उछाल देखने को मिलती है। इन लोक नृत्यों में वे पद–संचालन निर्धारित होते हैं, जिनमें लोक नर्तक गण अनोखे दृश्य प्रस्तुत करते है, मानो वे हवा में तैर रहे हों। लोकनृत्य की यह मुद्रा केवल उछाल से ही संभव होती है। लोकनर्तक जब नृत्य करते–करते मस्ती मे सराबोर होते हैं तो उछाल की भाव–भंगिमा देखते ही बनती हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर लय–ताल में कूदने को ''उछाल'' कहते हैं। उछाल का ज्वलंत रूप प्रमुखतः पंजाब के भांगड़ा, गुजरात के डांडिया रास, पश्चिम–बगंल के पुंगचोलम तथा नागाओं के लोक नृत्यों में देखने को मिलता है। उछाल युक्त लोवनृत्यों में जैसे–जैसे रिदम गति पकड़ता है, जोशीली एवं कलापूर्ण उछालों का करिश्मा दर्शकों को आनंद–विभोर कर देता है। भारतीय लोक नृत्यों में यह अनूठी भावमुद्रा होती है।

ताली

ताली बजाना मानव जाति की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। ताली बजाना एक शारीरिक किया है। किसी व्याख्यान की समाप्ति पर, किसी उत्सव या आयोजन आदि में हार या पुष्पगुच्छ अर्पित करने पर, खुशी के

किसी अवसर पर या किसी कार्यक्रम आदि को समाप्ति पर स्वाभाविक रूप से तालियों को गड़गड़ाहट वातावरण को सुखमय बनाती है ।

तालियों की यही आनन्दात्मक अनुभूति भारतीय लोकनृत्यों में एक मुद्रा के रूप में व्याप्त है । अनेक लोक नृत्यों में ताली बजाने की प्रधानता होती है। लोक नृत्यों में ताली रूपी यह क्रिया प्रमुखतः लोक गीतों के साथ सम्पन्न होती है। तालीप्रधान लोक नृत्य अधिकता महिलाओं द्वारा नाचे जाते हैं। हाथों का सुन्दर संचालन और पैरों की थिरकन इन लोक नृत्यों की अपनी निजी विशेषता होती है। भारत के ताली प्रधान लोकनृत्यों में जिनका प्रमुख स्थान है, उनके नाम इस प्रकार है–

(1) गुजरात का गरबा,

(2) छत्तीसगढ़ का सुवा,

(3) धार–झाबुआ (मध्यप्रदेश) का डोहा,

(4) मंडला (मध्यप्रदेष) का रीना,

(5) पंजाब का रीना

(6) उड़ीसा का रिंझो

लचक

लचक, जिसे लोच भी कहा जाता है। नृत्य करते समय लोक नर्तकों की यह स्वाभाविक शारीरिक किया है, जिसके आधार पर नृत्यों की विभिन्न

मुद्राओं का प्रदर्शन किया जाता है। लोक नर्तकों के शरीर मे जितनी ज्यादा लोच–लचक होगी, उतना ही सुंदर और आकर्षक होगा। लोच–लचक के द्वारा लोक लोक नर्तकों का बिलकुल कमानी या स्प्रिंग जैसा हो जाता है। लोच–लचक का स्थान प्रमुख रूप से नर्तकों की कलाई, कमर, गर्दन,घुटने एवं पैर के गट्ठों में होता है। भाव–भंगिमाओं मुद्राओं का नयन सुख इसी लोच–लचक के द्वारा संभव होता है।

झूम

झूम का अर्थ है, झूमना। जैसे हाथी झूमते हुए चलता है। शराबी की झूम जगप्रसिद्ध जिस प्रकार हवा के झोको से वृक्ष की शाखाएँ झूमती है,उसी प्रकार लोक नृत्यों में झूम एक मुद्रा,भगिमा,या क्रिया के रूप में व्याप्त है । जब लोक नतक,अपनी पूरी मग्न होकर सम्पूर्ण शरीर के कडेपन को शिथिल कर लोकनृत्य करता है, तो क्रिया स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है। लोक नृत्यों में झूम वह चमत्कारिक स्वागविक क्रिया है, जो दर्शकों को बरबस अपने प्रभाव में ले लेती हैं तथा दर्शक, अपने स्थान में झूमने लगते हैं । करमा झूमर नृत्य एवं पूजा नृत्य इसके साक्षात् उदाहरण है ।

ठुमक

इसे ठुमकी भी कहा जाता है । भारत के अनेक लोकनृत्यों में ठुमक–ठुमक कर संचालय की सहज

प्रवृत्ति पाई जाती है । पंजाब का भांगड़ा लोकनृत्य ठुमक क्रिया लिए प्रसिद्ध है। लोकनृत्यों में ठुमक का सीधा संबंध लोक नर्तकों के कूल्हो, गर्दन कमर,आंख हाथों की उंगलियां, पंजे एवं चेहरे से होता है । जब पैरों में घुघंरू होते है तो लोकनृत्यों में ठुमके की सुन्दरतम मुद्रा देखते ही बनती है ।

उड़ान

उड़ान कहते ही हमारा ध्यान पक्षियों के उड़ने की ओर जाता है ।चूंकि लोकनृत्यों जन्म प्रकृति की गोद में हुआ है, अतः लोक नृत्यों में प्राकृतिक प्रवृत्तियॉ ही अधिक समाहित है । उड़ान भी लोक नृत्यों की एक प्राकृतिक प्रवृत्ति एवं क्रिया है । पक्षियों समान लोक नर्तको ने अपने विभिन्न लोक नृत्यों में उड़ान मुद्रा को स्थापित किया लोक वाद्यों की गति के साथ जब नर्तक अपने दोनों हाथों की मुद्रा पक्षियों के परों की बनाता है, तो कुछ क्षणों के लिए वह अपने अन्तर्मन से पक्षियों के लोक मे जाता है । यह क्रिया द्रुत गति के लोकनृत्यों में सषक्त रूप से पाई जाती है। भगोरिया नृत्य,पंथी नृत्य, भांगड़ा नृत्य एवं डांडिया रास नृत्य आदि इसके उदाहरण है ।

थिरकन

थिरकन का संबंध ध्वनि तरंगों से होता है । लोक नृत्यों में यह एक भौतिक क्रिया है लोक वाद्यों से निकली विषेंष ध्वनि तरंगे लोक नर्तको के पैरों में

थिरकन पैदा कर उन्हें लोक नृत्य के लिए उद्यत करती है । यह गुण मादर, मृदंग ढोल निषान ढोलक नंगाड़े एवं नगडिया आदि अवनद्य वाद्यों में सर्वाधिक है। इन लोक वाद्यों मे थाप पड़ते ही थिरकन उत्पन्न हेती है और लोक नृत्य प्रारंभ हो जाता है । लोक नृत्य में यह क्रिया पैरों की उंगलियों पंजे और एड़ियें द्वारा उत्पन्न होती है। थिरकन पारस्परिक संबंध लय, ताल एवं थाप से विषेष रूप से होता है।

झटका

मानव की दैनदिन क्रियाओं में उसके अंग–प्रत्यगों से झटकने का कार्य सम्पन्न होता है । जैसे गीले कपड़े से पानी झटकना कपड़ों को झटक कर धूल आदि साफ करना हाथ–पैर झटकना महिलाओं द्वारा स्नानोपरांत केष झटकना आदि। इसी तरह पषु–पक्षियों में भी शारीरिक अंगों को झटकने की प्रवृत्ति पाई जाती है । शरीर की मांस–पेषियों के क्षण्कि अवरोध को भी कभी–कभी झटक कर ठीक किया जाता है । ऐसा ही झटका लोक नृत्यों की विभिन्न मुद्राओं एवं भंगिमाओं में सहज एवं स्वाभाविक रूप से लगाया जाता है। लोकनृत्यों में पैरो को पटकना और लय ताल के साथ उचट कर आगे–पीछे चलना ही झटका कहलाता है । एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर नृत्य करने के लिए उचटकर कूदने में भी

झटका की मुद्रा का निर्माण होता है। नृत्य करते समय कमर,गर्दन,पैर एवं हाथ झटका के प्रमुख अंग होता है।

लहक — कुत्ता तेज गर्मी के कारण जब अत्यन्त व्याकुल होता है तो अपनी लंबी जिन्हा को लहकते हुए बाहर निकाल कर अपनी व्याकुलता दूर करता है किन्तु लोक नृत्यों में यही लहक लोक नर्तकों की आनन्दानुभूति का साधन बनती है। मध्यप्रदेष की बैगा जन–जाति के लोक नृत्य लहक प्रधान होते है। बैगाा लोकनर्तक जब करमा खरी और करमा लहकी करते हैं तो इन लोक नृत्यों में लहक क्रिया व भावनुभूति की छवि देखते ही बनती है ।

मोरचाल — राष्ट्रीय पक्षी मोर से सभी भली–भांति परिचित है । प्रकृति प्रदत्त मोर की बहुरंगी सुन्दरता से मानव सदैव सम्मोहित रहा है । भारतीय लोक नृत्यों से इस पक्षी का अभिन्न संबंध है। कहीं इसके परों की अनन्त उपयोगिता है, तो कहीं इसकी चाल की गहरी पैठ है मोर चाल लोकनृत्यों में अनूठी मुद्रा है । इसे मोर घुसन के नाम से भी जाना जाता है । वैसे तो भारत के अनेकानेक लोकनृत्यों में मोरचाल की मुद्रा पाई जाती है, किन्तु मध्यप्रदेष में राई नृत्य में मारे चाल का अद्वितीय चमत्कार है । राई नृत्य में एक ही

जगह चौतरफा घूमती हुई बेड़ानी मुरैठा लगाकर पलटरी है और गर्दन को घुमाती है तो रसिक मिजाज दर्षक बेड़नी पर लट्टू हो जाते है। छत्तीसगढ़ के ही रायगढ़ के सरहुल लोक नृत्य में वादकरगण अपने को साक्षात् मयूर समझकर मोर चाल में नृत्य करते हुऐ वाद्य बजाते है। इस समय वादकगण मयूर पंख से निर्मित चुब्बा झोल धारण करते है।

लंगड़ी चाल

मानव अपने दो पैरों से चलता है, भागता है, कूदता–फांदता है तथा नृत्य करता है, किन्तु किसी कारणवष जब मानव के किसी एक पैर में कोई विकृति या दोष आ जाता है तो उसकी प्रकृतिजन्य सामान्य चाल में अंतर आ जाता है। इसे लंगड़ी चाल कहते है। चौपाया जानवरों को भी कभी–कभी यही स्थिति हो जाती है। लोकनृत्यों की मुद्राओं में भी इसका प्रभाव पड़ा और उनकी भाव–भंगिमाओं या मुद्रओं में लंगड़ी चाल ने जन्म लिया । लोकनृत्यों में लंगड़ी चाल के अनुरूप लय, ताल का भी निर्माण किया गया । तदनुसार इन लोक नृत्यों में वादन एवं पद–संचालन लंगड़ाने के समान होते हैं करमा लंगड़ा एवं करमा खाप इसके प्रमुख उदाहरण है।

बैठकी — लोक नृत्यों में बैठकर नृत्य करने को बैठकी कहते है । बैठकी मुद्रा के लिए अलग–अलग नृत्यों में अलग–अलग समय और स्थान निर्धारित होता है ं कुछ लोक नृत्यों में बैठकी किया मुक्त और स्वच्छन्द रूप से सम्पन्न होती है, किन्तु कुछ में यह गीत की पंक्ति पर निर्भर होती है । छत्तीसगढ़ का फुगड़ी नृत्य तो पूर्ण रू‍प से बैठकी पर ही निर्भर होता है। पंजाब के भांगड़ा व गिद्दा में मुक्त और स्वच्छन्द बैठकी होती है , जबकि हिमाचल प्रदेष के लोक नृत्यों में बैठकी का समय निर्धारित एवं निष्चित होता है ।

ढंड़कचका — चक्र की तरह लुढ़कने वाली मुद्रा को लोक नृत्यों में ढंड़कचका कहते है। लोक नर्तक को उंमग आती है और वह पल भर में ढंड़कचका की मुद्रा में लीन हो जाता है । भारता में अनेक ऐसे लोक नृत्य है , जिनमें लोक नर्तक नृत्य करते हुए धरती पर पलक मारते ढंड़कने लगता है ।

सर्पीली लहरियॉ — सर्प की वक्र चाल ही सर्पीली लहरियॉ हैं ।लोक नर्तक एक के पीछे एक होकर लम्बी कतार में सर्प जैसी लहर बनाते है। महाराष्ट्र का तर्पा नृत्य एवं छत्तीसगढ़ का गवर नृत्य सर्पीली लहरियों के लिए प्रसिद्ध है।

तिनकोनियां लोक नृत्यों में नृत्य करते हुए तीन कोण बनाना तिनकोनियॉ कहलाता है । यह मुद्रा लोक नृत्यों में इतनी तीव्रता से निर्मित होती है कि साधारण दर्षक इसे समझने में एकाएक असमर्थ रहता है । छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले में निवास करने वाली धुर्वा जात के परब नृत्य में तिनकोनियॉ मुद्रा को देखा जा सकता है ।

अटारी भवन निर्माण की आधुनिक चमक–दमक पूर्ण अटटालिकाओं के प्रभाव से भारतीय ग्रामीण क्षेत्र का जनमानस आज भी अप्रभावित हैं गांवों में यदि किसी ने एक मंजिला या दो मंजिला भवन बना लिया तो उसे आंचलिक बोली में अटारी कहते है। हमारे भारतीय लोक नृत्यों में भी अटारी का पारम्परिक चलन है। अटारी बनाने के लिए लोक नर्तक नृत्य करते हुए गोल घेरे में एक–दूसरे के हाथों को पकड़कर तथा कन्धों पर चढ़कर जब एक, दो या तीन मंजिल बनाते है, तो इसे अटारी कहते है । यहा किया वाद्यों ओर गीतों की लय, ताल व स्वर के साथ नृत्य करते हुए निर्विघ्न सम्पन्न होती है । मध्यप्रदेष के बेवंर नृत्य, अटारी नृत्य एवं (छत्तीसगढ़) पंथी नृत्य इस किया के परिचायक है। पंजाब के भांगड़ा नृत्य में एकल अटारी का निर्माण लोक नर्तक

अति उंमग व मस्ती से साथ करते है। इस क्रिया को पिरामिड्स के नाम से भी जाना जाता है । गुजरात के आदिवासी नृत्य में भी अटारी बनाई जाती है।

बिलाई मारना बिल्ली जिस तरह से दुबक–दुबक कर दौड़ती है, उसी तरह लोक नृत्यों में भी बिलाई मारना एक क्रिया पाई जाती है , जिसमें बिल्ली के दुबकने जैसा संचालन किया जाता है।

कुलाटें ग्रामीण परिवेष में छोटे–छोटे बच्चे जब खेल–खेल में घर के अंगान में सिर के बल से पूरे शरीर को पलटाते हैं तो इस क्रिया को कुलाटें या पलटनी कहते है । भारत के अनेक लोक नृत्यों में कुलाटें मारने की क्रिया अत्यन्त लोकप्रिय है । लोकनृत्यों में कुलाटें मारने या पलटनी खाने की कलात्मक मुद्रा लोकनर्तक एवं लोकवादक दोनों में समान रूप से सम्पन्न होती है । इस क्रिया में पलटा खाने के बाद झटके के साथ लय, ताल के साथ उठने के लिए नर्तक एवं वादक को अत्यधिक सतर्क रहना पड़ता है।

चकरी लोकनृत्यों में चकरी का महात्वूर्ण स्थान है। इसका उपयोग अवसरानुकूल भाव–भांगिमा, मुद्रा या क्रिया के रूप में होता है। चकरी को आंचरिक बोलियों के अनुसार सम्पूर्ण भारत में अलग नाम से जाना जाता

है , यथा भ्रमरी, घेर, घूमरी चक्कर, गिरदी एवं घूम आदि। लोक नर्तक अपनी शारीरिक क्षमता के अनुसार लोक नृत्यों में इसे सम्पन्न करता है । गुजरात का गरबा, राजस्थान का घेर–घूमर मध्यप्रदेष का राई, पंजाब का गिद्दा एवं उत्तरप्रदेष का चरकुल आदि लोकनृत्यों में चकरी का ही सर्वाधिक आकर्षण होता हे ।लोक नृत्यों में इसकी अवस्था कभी आधा घूमना कभी पूरा चक्कर लगाना तथा कभी–कभी निर्धारित अवधि के अनुसार चकरी मारना होता है।

मटक

मटक शब्द कहते ही हमारा ध्यान मटकने की ओर जाता है । लोक नृत्यों की यह प्राथमिक एवं अनिवार्य क्रिया है । विष्व का ऐसा कोई भी लोकनृत्य नहीं होगा, जिसमें नृत्य तो हो किन्तु मटकने की क्रिया देखने को न मिले । लोक नृत्यों में स्वाभाविक रूप से इस क्रिया की प्रधानता निहित है ं वास्तव में नृत्य करना एवं मटकना एक–दूसरे के पर्याय व पूरक है। लोक नृत्य जब प्रांरभ होता है तो सर्वप्रथम लोक वाद्यों की ध्वनि तरंगे, लोक नर्तको के शरीर में रक्त–कणों के साथ समाहित होकर एक मनोवैज्ञानिक हलचल पैदा करती है । इसी के साथ लोक नर्तकों के समस्त अंग–प्रत्संग मटकना क्रिया

के सषक्त प्रभाव में आते हैं, फलस्वरूप उनका ध्यान उस समय सर्वस्व भूलकर केवल लोक नृत्य की ओर ही केन्द्रित हो जाता है ं लोक वाद्यो पर जोर की थाप पड़ती है और ओजपूर्ण मटक के साथ नृत्य प्रारंभ हो जाता है। मटक का यह सिलसिला नृत्यावधि में तरह–तरह के मनोरंजन रूपों के साथ नृत्य की समाप्ति तक जारी रहता है। लोकनृत्यों में मटक का सीधा संबंध लोक नर्तकों की आंख, मुख ,गर्दन, कमर, पैर, हाथ एवं उंगालियां से रहता है । लोकनृत्यों में मटक से संबंधित मुद्राओं भंगिमाओं एवं क्रियाओ की गति, लय, सीमावधि एवं प्रस्तुति वृहत् होती है । यह लोक नर्तकों की चमत्कारिक कला क्षमता पर निर्भर होता है कि वह कितनी देर तक और किस तरह मटक–मटक कर दर्षकों का मन मोह सकता है।

इस तरह भारतीय लोक नृत्यों के लोक कलाकारों में प्रदर्षनकारी विविध मुद्राओं, भाव–भंगिमाओं एवं क्रियाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि इनमें भारतीय लोक नृत्य स्वस्थ मनोरजंन, स्फूर्तिजन्य शक्ति स्वच्छ विचार–धारा एवं आकर्षण के केन्द्र बनते है । भारतीय लोक नृत्यों के लोक कलाकार यद्यपि अधिक पढ़े–लिखे एवं संस्थागत् षिक्षित– प्रषिक्षित नहीं होते है । किन्तु कला–कौषल अभिनय, प्रस्तुति, तत्कालिक–समझ, विवेकपूर्ण सामंजस्य क्षमता एवं

लोकनृत्य निपुणता आदि में दक्षता के लिए विष्व में इनका कोई सानी नहीं है। भारतीय लोक नृत्यकारों की यह कला–प्रतिभा इन्हें इनके पूर्वजों से परम्परानुसार विरासत के रूप में प्राप्त रहती है, जो अतीत काल से इनमें पुष्पित एवं पल्लवित होती रहती है । यह सब इनके पूर्वजों की देन है तथा पूर्वज ही इनकी इस लोककला के गुरू है । भारतीय लोक नृत्यों की कोई निर्धारित षिक्षण पद्धति नहीं रहीं है न ही इनकी कोई पाठषाला या षिक्षण संस्थाएँ थी। भारतीय लोक नृत्यकार जन्म–जन्मान्तर से लोक नृत्यों को समर्पित हे । आज भी इनकी समर्पण भावना में कोई कमी नहीं आई है । उल्लासित एवं पुलकायमान ये भारतीय लोक नृत्य जब अपनी सहज भाव–भंगिमाओं के साथ प्रदर्षित होते है तो जन–जन के अंग–प्रत्यंग स्पंदित होकर थिरकने लगते है तथा दर्षकगण क्षण भर के लिए जीवन की छोटी–बड़ी विसंगतियों आदि को भूलकर सुखानुभूति के अपार सागर में तरंगित हो उठता है। यह मनौवैज्ञानिक सत्य है।

l¦Jh- y{eh lk<h ifl) uR;kxuk ¼ek[kiky] nUrokMk
cLrj½
;¦od fofLeYyk [kk lxhr ukVd vdkneh vokMh
ykduR;k d lj{k.k d ifr jk"Vh; fpUru

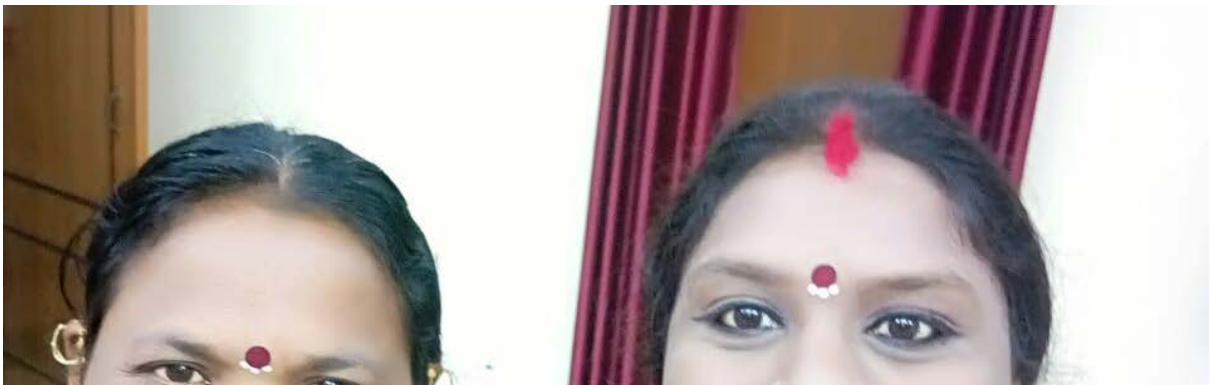

लोक नृत्यों की मौलिकता को जीवित रखने के लिए राश्ट्रीय पैमाने पर जागरूक प्रयत्न निरंतर करने में बहुत आवष्यकता है। यदि ऐसा न किया गया तो अतीत की अत्यन्त बहुमूल्य धरोहर वर्तमान के प्रदूषित वातावरण के कारण विस्मृति के गर्भ में समा सकती है। लोक नृत्यों की मौलिकता को जीवित रखने का दायित्व उन सब लोकनृत्य, लोक संगीत या लोक कला के विद्यार्थियों, शोधाथियों, लोक कलाकारों, मर्मज्ञों एवं विषेष पर होना चाहिए, जो लोक नृत्य या लोक सं गीत के सृजनात्मक रख–रखाव के तरीके में सिद्धस्थ है तथा जिनका इस क्षेत्र में गहरी पैइ है। यदि इस

संवेदनषील तथ्य पर गंभीरतरपूर्वक विचार नहीं किया गया तो आधुनिक बदलते परिष्श में लोक संगीत या लोक नृत्यों के नाम पर अनेक कुत्सित, दोषपूर्ण तथा स्वैच्छिक रचनाएँ करने लगेंगी, जिससे इनकी मौलिकता एवं पराम्परा को घातक आघात पहुचेगा। अनेक लोगों मने तो ऐसा करना प्रारंभ भी कर दिया है, यथा– लोक नृत्य व लोक संगीत में गिटार, बेंजो, वायलिन, केषियों व तबला आदि का प्रयोग।

प्रकृति परिवर्तनषील है, अतः सांसारिक गतिविधियों मे परिवर्तन होना अवष्याम्भावी है। लोक7कलाओं लो–संगीत या लोक नृत्यों में भी समय एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन स्वाभाविक है। इसे रोक पाना प्रायः असाध्य कार्य है, किन्तु लोक संगीत एवं लोक नृत्यों के उपासक या मर्मज्ञों पर यह महत्वपूर्ण दायित्व है कि किसी परिवर्तन या नई चेतनाओं के अनुसार नवीन रचनाओं में लोक संगीत या लोक नृत्यों के मूल तत्व की प्रामाणिकता को कायम रखना अतिआवष्यक होना चाहिए। इस ओर सतत् जागरूक् रहने की महा आवष्यकता है। ऐसे किसी भी प्रदूषण की जानकारी प्राप्त होने पर मौलिकता की रक्षा हेतु सामाजिक, क्षेत्रीय, राज्यीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर हस्तक्षेप आवष्यक है। यह तभी संभव है जब दक्ष लोक संगीतज्ञों, लोक नृत्यकारों की देखरेख में प्रतिभाषाली एवं लोक नृत्यो के प्रति समर्पित लोक–संगीतकार तथा लोक नर्तकगण स्तर पर संगठित प्रयास करें। यह चेतावनी इसलिए आवष्यक है, क्योंकि प्रत्येक लोक नृत्य की अपनी विषिष्ट परिस्थितियाँ एवं वातावरण होता है। इस विषिष्टता के विपरीत किसी पुर्नरचना या पुननिर्माण की प्रक्रिया में स्वरूप, आत्मा या शक्ति क्षीण होने का

पूर्ण अंदेषा है। लोक नृत्य की स्वभाविकता, जो इनका सबसे बड़ा आकर्षण एवं विशेषता है, विनष्ट होने पर इनका विघटन होने की पूर्ण संभावना है। इसका निदान यह होना चाहिए कि आधुनिक रंगमंच पर लोक नृत्य प्रस्तुत किए जाने के समय वे सभी मूल तत्व कायम रखे जाये जो इनमें मौलिकता के लिए आवष्यक है या जिनमें इनकी सांस्कृतिक तथा पारम्परिक मान्यताएँ निहित है। इनके लिए लोक नृत्य विषेष की गहन जानकारी के साथ–साथ संबद्ध समुदाय के लोक जीवन के संबंधित ज्ञान आवष्यक है। केवल लोकनृत्यों के स्वरूप का तकनीकी ज्ञान मात्र ही पर्याप्त नहीं है।

लोक नृत्यों के संरक्षण के लिए एक उपयुक्त माध्यम प्रशिक्षण संस्थाएँ, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय भी हो सक्ले है, जहाँ अन्य विषयों के साथ लोकनृत्य के पाठ्यक्रम निर्धारित कर छात्र–छात्राओं व प्रशिक्षणार्थियों को मौलिक शिक्षण दिया जावे। इतना ही नहीं, शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त छात्र–छात्राओ समुचित प्रोत्साहन दिया जाना आवष्यक होगा, ताकि उनकी शिक्षा–दीक्षा मे जीवन्तता बनी रहे। इस लक्ष्य को उन समस्त संस्थाओं एवं व्यक्यिों के संयुक्त प्रयास से पूरा किया जा सकता है, जो भारतीय लोक नृत्यों पुनरूत्थान, संरक्षण और मौलिक प्रचार–प्रसार के प्रति निष्ठावान हैं। लोक नृत्यों के इस पहलू के प्रति उचित सार्वजनिक दृष्टिकोण से राष्ट्रीय एकता को प्रक्रिया को तेज करने में बड़ी सहायता मिल सकती हैं।

ej nk o"k d vuHko ,o fpru

करमा लोक नृत्य की उत्पत्ति पर विचार करने के पूर्व मानव की आदिम सभ्यता के अतीत काल की ओर भी दृष्टिपात करने की आवश्यकता है। हजारों वर्ष पूर्व जब आर्य एवं सभ्य जातियां नहीं थीं, आज के जैसे शहर और गांवों का प्रचलन नहीं था, उस समय लोग गिरि कंदराओं एवं जंगलों में रहकर जीवन –निर्वाह करते थे। परस्पर मेल–जोल, नाता–रिश्ता जैसे सामाजिक क्रिया कलापों का पूर्ण अभाव था। सांसारिक गतिविधियों से अनभिज्ञ आदिमानव को धरती से अन्न उपजाना नहीं आता था। शरीर ढंकने के लिये न तो कोई उपयुक्त साधन थे और न ही महत्व समझते थे। आरंभिक काल में आदिमानव प्रायः नग्न ही रहा करता था। कालान्तर में पेड़

की छाल और पत्तों से शरीर को ढांकना सीखा गया। खाने के लिए कंद–मूल फल या जंगली जानवरों का मांस प्राप्त किया जाता था। शनै–शनैः शिकार का ज्ञान प्राप्त कर तीर–कमान, भाला बरछी आदि अविकसित अस्त्र–शस्त्र लेकर शिकार की तलाश में दिन–रात जंगलों में भटकते रहते थे। इसी उपक्रम में वे कभी जानवरों का शिकार करते तथा जानवर उन्हें अपना शिकार बनाते थे। दिन–रात जंगलों, झाड़ियों में भ्रमण के दौरान आदिमानव ने प्रकृति की अनेक रचनाओं, क्रियाओं का अवलोकन उनमें रच बस कर निकट से किया। उसने हवा के झोकों से डालियों को झूमते देखा, बिजली की चमक देखी, वर्षा की बूंदों की टप–टप की ध्वनि का अनुभव किया, बादलों की गर्जना सुनी तथा जंगली हाथियों को मदोन्मत्त चाल से झूमते देखा। चिड़ियों की चहचहाहट, भौरों की गुनगुनाहट, झींगुरों की झनझनाहट और कोयल के कुहु–कुहु का मधुर स्वर भी उसके कानों में पड़ा। हिरन की चौकड़ी, सर्प की लहराती गति, मेंढकों की उछाल तथा मोर और कबूतर की थिरकन ने उसको आकर्षित कर नृत्य क्रिया के आर्भिभाव के लिए प्रेरित किया। प्रकृति की इस अनोखी क्रियाशीलता को देखकर उसने भी अनुकरण करना प्रारंभ किया। चूँकि मानव प्रारंभ से ही कौतूलहल प्रिय एवं सृजनशील रहा है, अतः प्रकृति की अनेक मनोहरी कलाओं की इन नृत्यात्मक विधाओं से प्रेरणा लेकर आदमिानव ने अपने मनोरंजन के लिए धीरे–धीरे अनेक नृत्य कलाआकें को जन्म देना आरंभ किया। इससे उसे सुख और मनोरंजन अनुभूति का अनुभव हुआ। इसी अनुभूति के

अनुरूप आदिमानव प्रकृति से प्राप्त नृत्यात्मक क्रियाओं की साधना में निरन्तररत् रहा। अनेक उतार–चढ़ाव के उपरान्त उसने लोकनृत्य कला को जन्म दिया, जो कालान्तर में विभिन्न लोक नृत्यों के रूप में स्थापित होकर लोक जीवन के अभिन्न अंग बन गये।

लोक नृत्य प्रकृति की अनोख देन है। प्रकृति–दर्शन का दूसरा नाम ही लोक नृत्य है। डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे की ''भारतीय संगीत का इतिहास'' के अनुसार ''भारतीय परम्परा के अनुसार नटराज शिव नृत्य कला के आदि श्रोत है और ''नृत्यकला का ताण्डव तथा लास्य रूप भगवान शिव तथा पार्वती की देन माना जाता है।

लोक विश्वास के अनुसार भगवान शंकर एवं माता पार्वती को प्रकृति का रूप ही माना गया है, तदनुसार क्रियाएँ वीभत्स भंकगमाएँ आदि रूप व्यापत है जो ताण्डव नृत्य में भी विद्यमान होते है। जिस तरह आदिमानव शारीरिक स्वरूप और सृष्टि की अन्य वस्तुओं का क्रमिक एवं युग परक विकास हुआ, उसी तरह लोक नृत्यों का भी क्रमिक एवं युगानुरूप विकास हुआ है।

मानव आदिकाल से नाचता चला आ रहा है। छोटा सा शिशु पालने में जब आनंद विव्हल होता है तो उसकी खुशी का पारावार नहीं रहता। वह हाथ–पैर चलाता है, किलकारी मारता है। उसका आनंद उसके अंग प्रत्संगों से मानों फूटकर निकल पड़ता है। मृंग का छौना, गाय का बछड़ा मां का दूध पीकर खुशियाली उछलता–कूदता है। पक्षी भी जब मन में उमंग आती है, तो

अनेक–अपने जोड़ो के सामने उन्हें रिझाने के लिए नाचते है। काले–काले मेधों को देखकर मोर नाचते है कबूतर–कबूतरी के आसपास नाचते हुए किलोल करता है। इस प्रकार जान पड़ता है कि समस्त जीवधारी वर्ग में आनंद का सृजन होता है और वह आनंद अपने आप प्राण मात्र के हाव–भाव, अंग संचालन से या अंग विन्यास से प्रकृट होता है। उसके अंग फड़कते है, मचलता, उछलता है– बस लोक नृत्य का जन्म का यहीं से होता है।

मानव, अन्य प्राणियों की तुलना में बुद्धिमान है, विवेकशील है। आदिकाल से ही उसने इस प्रकृति–जन आनंद' को यों ही बिखरने नहीं दिया। युगानुरूप नर्तन की ये गतिविधियों मानव जीवन में अपने आप परिस्थिति की आवश्यकतानुसार श्रृंगारबद्ध होती गई। उन पर मानव मस्तिष्क मानव की विभिन्न प्रकार की रूचियों का प्रभाव पड़ा साथ ही सामाजिक संस्कार, आचार–विचार, वातावरण, परिश्रम आदि भी प्रभावित हुए। उनका क्रमिक लोकव्यापीकरण मानव के दैनिक जीवन मे हुआ। नर्तन, लोक नर्तन में परिवर्तित हुआ। लोक नर्तन की गतिविधियाँ निखरती गई मंजती गई, बनती–बिगड़ती गई और विभन्न प्रकार की शैलियों का रूप धारण करते हुए लोक नृत्यों में परिवर्तित होती गई तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तगत होती गई। आज जो हमारे सामने है, वह मानव समाज के ऐसे उल्लास, उमंग, आनंदानुभूति का एक जीवन चित्र है, प्रकृति प्रदत्त रूप है। यहीं तो लोक नृत्य है। लोक नृत्य में मानव अपना सम्पूर्ण अस्तित्व भूलकर लोक नृत्य रूपी सागर में डूब

जाता है। उसकी आनन्दमयी चेतना उस चरम छोर पर पहुंच जाती है, जहाँ केवल लोक नृत्य–संगीत की माहक तल्लीनता रह जाती है, और फिर समस्त प्रकृति उसे अपने में ही समाहित प्रतीत होती है – यहीं लोक नृत्य है।

लोक नृत्य प्राकृतिक है। न इनकी शास्त्र परक रचना की गई है, न ही इनके शास्त्रोक्त सूत्र निर्धारित है। काल की गति और उतार–चढ़ाव का सामना करते हुए, अपने अस्तित्व की स्वयं रक्षा करने में सक्षम ये लोक नृत्य सदियों से समाज और राष्ट्र की निधि के रूप में निखरते और संवरते चले आ रहे है। प्रकृति प्रेरणा की प्रतिमूर्ति है, हमारे ये लोकनृत्य। प्रकृति की नित नई बदलती हुई छटा और उन्मुक्त वातावरण ने आदि मानव को नृत्य करने के लिए प्रेरित किया, ऐसा जान पड़ता है। लोक नृत्यों की सृजनशील के संबंध में कल्पना है कि सर्वप्रथम प्रकृति के बवंडरो की तरह लोक नृत्य भी बेतरतीब रहे होंगे। फिर मानव ने प्रकृति की लयात्मक कोमलता को अपनाया। उसने वृक्षों की लहराती हुई कोमल डालियों से लोच चुराई। पानी की मचलती हुई लहरों से लहराना पाया। पक्षियों की कतारों से नृत्य में कतार बनाना सीखा। पक्षियों से फुदकना, हिरनों से उछलना और कनरव से समूह में गाना सीखा। इस प्रकार लोक नृत्य की समस्त खूबियाँ मानव ने प्रकृति और उसके मुक्त वातावरण से प्राप्त की।

जिस भू–भाग की जैसी प्राकृतिक छटा है, आज वहाँ प्रचलित लोक नृत्य भी उसी के अनुरूप है। बीहड़ की छाप उनकी साज–सज्जा में लगाई है। अपने सांस्कृतिक रीति–रिवाजों को लोक नृत्य रूपों माला में पिरोया है। चूंकि स्थान विशेष के अनुसार

समाज भी विभिन्न वर्गो में विभाजित है, उसकी संस्कृति, उसकी मान्यताएँ भी भिन्नता है। वे खास समाज, जाति, क्षेत्र या वर्ग के बन गए है। पर मूलभूत तत्व सभी लोक नृत्यों में समान हैं, यथा– समूह, पंक्तिबद्धता अर्ध घेरा, उछलकूद, सरपट चाल, गोल घेरा, लोच, कलाबाजी, हाथ में हाथ की पकड़ एवं पद–संचालन आदि।

लोक नृत्यों की उर्वरा भूमि ग्रामीण परिवेश है। गांवों में लोक नृत्यों के आयोजन के लिए कोई निष्चित या नपा तुला रंगमंच नहीं होता है। बल्कि खुले रूप से ग्रामीण जनों द्वारा निर्धारित किए गए एक सार्वजनिक स्थान में लोक नृत्य सम्पन्न होते हैं। ऐसे सार्वजनिक खुले स्थान को गांवों में 'खाना', 'अखरा' 'चौपाल', 'मैदान', या 'डॉण' आदि नामों से जाना जाता है। गांव के लोग बिना किसी मान–मनौव्वल की प्रतिक्षा के इस निर्धारित स्थान में लोक नृत्य के लिए एकत्र होते हैं। आपस में चर्चाएँ होती हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक मामलों पर विचार–विमर्श होते है। चूंकि लोक नृत्यों के लिए यह स्थान खुला होता है। अतः लोक नृत्यों में सम्मिलित. ग्राम्य–जनों के मस्तिष्क एवं हृदय भी खुले होते हैं। नैतिक मूल्यों तथा विशाल सांस्कृतिक, मान्यताओं के उच्च आदषों का अनुपम उदाहरण हमारे लोक नृत्य हैं । गांव में जब लोक नृत्यों का आयोजन होता है तो गांव में निवास करने वाले हिंदु, मुसलमान, सिख, ईसाई गरीब, अमीर आदि सभी बिना किसी भेद–भाव या संकुचित भावनाओं के सम्मिलित होते हैं जो सम्मिलित नहीं होते हैं वे दर्शक बनकर प्रोत्साहित करते हैं । ऊंच–नीच, जात–पात जैसे कलुषित भावनाओं के लिए यहां कोई स्थान नहीं है । लोक नृत्य की बेला में विभिन्न धर्मों के अनुयायियों का एक ही धर्म है लोक नृत्य का आनंद प्राप्त करना। भारतीय लोक संस्कृति

का आधारभूत सत्व 'अनेकता में एकता' है इसलिए हमारे लोक नृत्यों में बहुआयामी विशेषता होती है । हमारी राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिकता सदूभाव का मर्म हमारे लोक नृत्यों में निहित है । इससे भी बडकर बात लोक नृत्यों में सन्विहित भावनात्मक एकता है । वास्तव में लोक नृत्य ग्राम्य जनों के हदय–पटल में एकदूसरे के प्रति सम्मोहक स्नेह जागृत करते हैं। यह एक मनौवैज्ञानिक अनुराग है। जिसके कारण ग्राम्य जन किसी जात–पाता या वर्ग भेद की कभी कल्पना भी नहीं कर पाता। लोक नृत्यों की छत्र–छाया में जाति भेद से ऊपर समग्र रुप से एक ग्राम–परिवार होता है। जो एकदूसरे के साथ सौहार्द्र पूर्ण संबंधो से जुड़ा रहता है। अवस्था के अनुसार समी वर्ग के लोग गांव में एक–दूसरे के भाई–बहिन, काका–काकी, मामा–मामी, दादा–दादी, पुत्र–पुत्री , भतीजा–भतीजी आदि पवित्र रिश्तों के अनुपालक होते हैं। यह भारत की निजी पहचान है। यह पहचान आज की नहीं सदियों पुरानी है। जो लोक नृत्य रूपी मातृत्व ममता के नाजुक बंधनों से अपने–अपने धार्मिक परिवेश में रहते हुए भी ग्राम्य–जनों को एक छोर से दूसरे छोर तक बांधे हुए हैं। यहीं वह मर्म है। जिसमें शहद जेसी मिठास, धवल बर्फ जैसी ठंडक दूध जैसी उज्जवलता और गुलाब और बेला जैसी खुशबू है। के समस्त विकारोन्मुख बंधन ढीले पड़ जाते है इस तरह गांवों. में कौमी एकता के ठोस प्रतीक हैं. हमारे लोक नृत्य।

lxhrk flUgk

File No. CCRT/JF-3/21/2015